अनेकान्त

मार्च १९५४

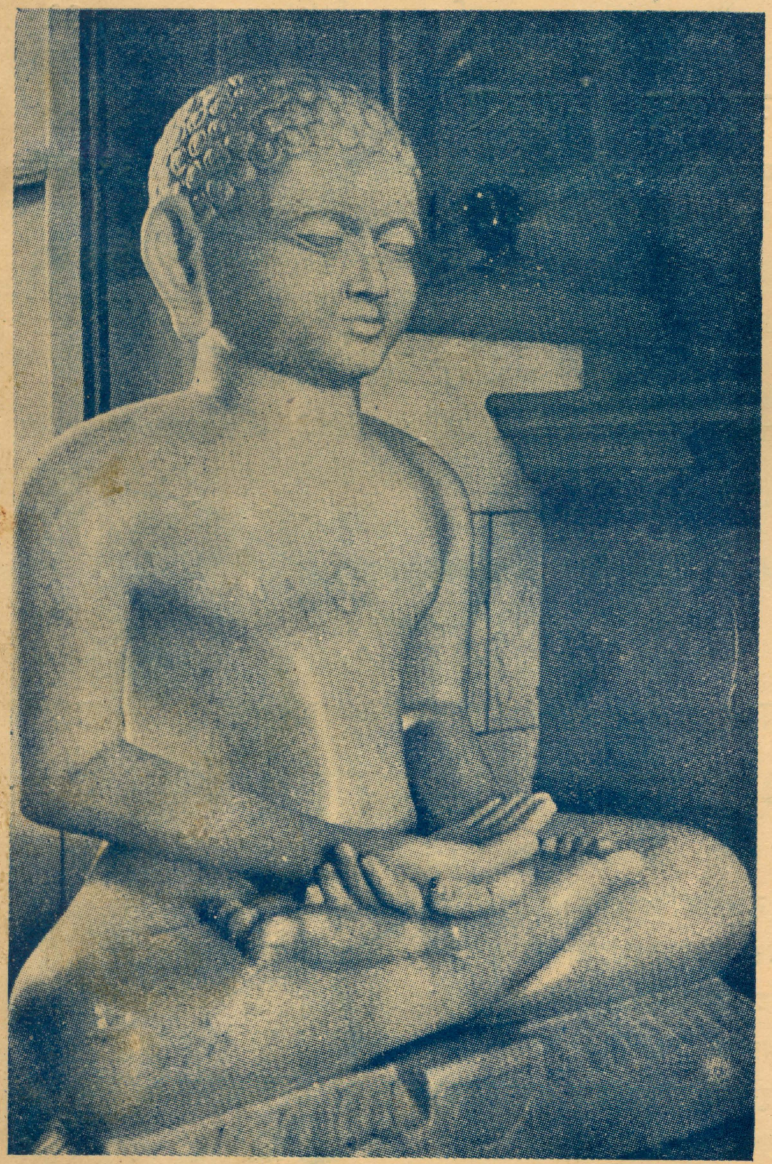

यह चित्ताकर्षक मूर्ति श्रीसीमन्धरस्वामीकी है और राजकोटके नूतन जैनमन्दिरमें विराजमान है। इस मन्दिर और मूर्तिका निर्माण सोनगढ़के सन्त सत्पुरुष कानजी स्वामीकी प्रेरणासे हुआ है और उन्हींके द्वारा यह प्रतिष्ठित है। यात्रा-र्थियोंको गिरनारजी जाते समय इस भव्यमूर्तिका दर्शन जरूर करना चाहिये।

सम्पादक-मण्डल
श्रीजुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'
बा० छोटेलाल जैन M. R. A. S.
बा० जय भगवान जैन एडवोकेट
पण्डित डी. एस. जैतली
पं० परमानन्द शास्त्री

अनेकान्त वर्ष १२
किरण १०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

१. श्री शारदा स्तवनम्—भ० शुभचन्द्र ३०३
२. जन्म जाति गर्वायतम्— ['युगवीर' ३७४
३. कविवर भूधरदास और उनकी विचार धारा—
[पं० परमानन्द जैन शास्त्री ३०५
४. श्री बाहुबलीकी आश्चर्यमयी प्रतिमा—
[आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि ३११
५. गरीबी क्यो ?—[स्वामी सत्यभक्त संगभसे) ३१४
६. हमारी तीर्थ यात्राके संस्मरण—
[पं० परमानन्द जैन शास्त्री ३१६
७. जैन धर्म और जैन दर्शन—
[श्री अम्बुजाक्ष सरकार एम.ए.बी.एल. ३२२
८. उज्जैनके निकट प्राचीन दि० जैन मूर्तियाँ—
[बा० छोटेलाल जैन ३२७
९. श्रमणका उत्तर लेख न छापना— ३२८
१०. श्री जिज्ञासा पर मेरा विचार—टाइटिल पे० ३
[चुल्लक सिद्धिसागर ३३०

मेरीभावनाका नया संस्करण

मेरीभावना की बहुत दिनोंसे मांगे आरही थीं, अतः वीरसेवामन्दिरने मेरीभावनाका यह नया संस्करण ३२ पौंडवे बढ़िया काग़ज पर छाप कर प्रकाशित किया है। जो सज्जन बांटनेके लिये चाहें उन्हें ५) रुपया सैकड़ाके हिसाबसे दी जावेंगी। पोस्टेज खर्च अलग देना होगा।

एक प्रतिका मूल्य -) एक आना है।

मैनेजर वीरसेवामन्दिर, ग्रन्थमाला,

जैनम्यूजियमकी आवश्यकता

देहलीमें किसी उचित स्थान पर एक जैन म्यूजियमकी अत्यन्त आवश्यकता है जिसमें पुरातत्त्वकी दृष्टिसे सब सामग्री एकत्रित की जाय। आशा है समाज पूरा ध्यान देगा वरना वीरसेवामन्दिको इस कमीकी पूर्ति करनी चाहिए।

१८-३-५४]

—पन्नालाल जैन अग्रवाल

जैन आर्ट-गैलरी

दिल्लीमें किसी योग्य स्थानपर जैसे लाल मन्दिर या नई दिल्लीमें एक 'जैन आर्ट-गैलरी' की अत्यन्त आवश्यकता है। जिसमें जैन आर्टको सर्वोत्तमरूपसे प्रदर्शित किया जाय। समाजको इसपर विचारकर शीघ्रही कार्यरूपमें परिणत करना चाहिए। अथवा वीरसेवामन्दिर जो अपना भवन बनवानेका आयोजन करे उसे इस लक्ष्यकी ओर ध्यान देना चाहिए।

—पन्नालाल जैन अग्रवाल

अनेकान्तकी सहायताके सात मार्ग

(१) अनेकान्तके 'संरक्षक'-तथा 'सहायक' बनना और बनाना।
(२) स्वयं अनेकान्तके ग्राहक बनना तथा दूसरोंको बनाना।
(३) विवाह-शादी आदि दानके अवसरों पर अनेकान्तको अच्छी सहायता भेजना तथा भिजवाना।
(४) अपनी ओर से दूसरोंको अनेकान्त भेंट-स्वरूप अथवा फ्री भिजवाना; जैसे विद्या-संस्थाओं, लायब्रेरियों, सभा-सोसाइटियों और जैन-अजैन विद्वानोंको।
(५) विद्यार्थियों आदिको अनेकान्त अर्ध मूल्यमें देनेके लिये २५), ५०) आदिकी सहायता भेजना। २५ की सहायतामें १० को अनेकान्त अर्धमूल्यमें भेजा जा सकेगा।
(६) अनेकान्तके ग्राहकोंको अच्छे ग्रन्थ उपहारमें देना तथा दिलाना।
(७) लोकहितकी साधनामें सहायक अच्छे सुन्दर लेख लिखकर भेजना तथा चित्रादि सामग्रीको प्रकाशनार्थ जुटाना।

नोट—दस ग्राहक बनानेवाले सहायकोंको 'अनेकान्त' एक वर्ष तक भेंट-स्वरूप भेजा जायगा।

सहायतादि भेजने तथा पत्रव्यवहारका पता:—
मैनेजर 'अनेकान्त'
वीरसेवामन्दिर, १, दरियागंज, देहली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरण का मूल्य ॥)

वर्ष १२ किरण १०	वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, देहली फाल्गुण वीर नि० संवत् २४८०, वि० संवत् २०१०	मार्च १९५४

भ० पद्मनन्दि-शिष्य-शुभचन्द्र-कृतम्

श्रीशारदास्तवनम्

सुरेन्द्र-नागेन्द्र-नरेन्द्रवंद्या, या चर्चिता योगिजनैः पवित्रैः।
कवित्व-वक्तृत्व-फलाधिरूढां, सा शारदा मे वितनोतु बुद्धिम् ॥ १ ॥
शब्दागमैस्तर्पित-देववृन्दं, मायाक्षरी सार्वपथीनमार्गम्।
मंत्राक्षरैश्चर्चितदेहरूपमर्चन्ति ये त्वां भुवि वन्दनीयाम् ॥ २ ॥
या चक्षुषा ज्ञानमयेन वाणी, विश्वं पुनातीन्दुकलेव नित्यम्।
शब्दागमं भास्वति वर्तमानं, सा पातु वो हंसरथाधिरूढा ॥ ३ ॥
प्रमाण-सिद्धान्त-सुतत्त्वबोधाद्या संस्तुता योगि-सुरेन्द्रवृन्दैः।
तां स्तोतुकामोऽपि न लज्जयामि, पुत्रेषु मातेव हितापरा सा ॥ ४ ॥
नीहारहारोत्थितधौतवस्त्राम् श्रीबीजमंत्राक्षर-दिव्यरूपाम्।
या गद्य-पद्यैःस्तवनैः पवित्रैस्त्वं स्तोतुकामो भुवने नरेन्द्रैः ॥ ५ ॥
अवश्यसेव्यं तव पादपद्मं ब्रह्मेन्द्र-चन्द्रार्क-हृदि स्थितं यः।
न दृश्यमानः कुरुते बुधानां ज्ञानं परं योगिनि योगिगम्यम् ॥ ६ ॥
कायेन वाचा मनसा च कृत्वा, न प्रार्थ्यते ब्रह्मपदं त्वदीयम्।
भक्तिं परां त्वच्चरणारविन्दे, कवित्वशक्तिं मयि देहि दीने ॥ ७ ॥
तव स्तुतिं यो वितनोतु वागि! वर्णाक्षरैरर्चितरूपमालाम्।
स गाहते पुण्य-पवित्र-मुक्तिमर्थागमं खण्डित-वादि-वृन्दम् ॥ ८ ॥
श्रीपद्मनन्दीन्द्र-मुनीन्द्र-पट्टे शुभोपदेशी शुभचन्द्रदेवः ॥
विदां विनोदाय विशारदायाः श्रीशारदायाः स्तवनं चकार ॥ ९ ॥

इतिश्रीशारदास्तवनम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जन्म-जाति-गर्वापहार

[कुछ अर्सा हुआ मुझे एक गुटका वैद्यश्री पं० कन्हैयालाल जी कानपुरसे देखनेको मिला था, जो २०० वर्षसे ऊपरका लिखा हुआ है और जिसमें कुछ प्राकृत वैद्यक ग्रन्थों, निमित्त शास्त्रों, यंत्रों-मंत्रों तथा कितनी ही फुटकर बातोंके साथ अनेक सुभाषित पद्योंका भी संग्रह है। उसकी कतिपय बातोंको मैंने उस समय नोट किया था, जिनमेंसे दो एकका परिचय पहले 'अनेकान्त' के पाठकोंको दिया जा चुका है। आज उसके पृष्ठ २२३ पर उद्धृत दो सुभाषित पद्योंको भावानुवादके साथ पाठकोंके सामने रक्खा जाता है, जो कि जन्म-जाति-विषयक गर्वको दूर करनेमें सहायक हैं। —युगवीर]

कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपला[द्]दूर्वापि गोरोमतः
पंकात्तामरसं शशांकमु(उ)दधेरिंदीवरं गोमयात्।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणि र्गोपित्तगो(तो) रोचना,
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छंति किं जन्मना ॥ १ ॥
जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो,
दूरे शोभा वपुषि नियता पंकशंकां करोति।
नूनं तस्याः सकलसुरभिद्रव्यगर्व्वापहारी
को जानीते परिमलगुणांकस्तु कस्तूरिकायाः। २॥

भावार्थ—उस रेशमको देखो जो कि कीड़ोंसे उत्पन्न होता है, उस सुवर्णको देखो जो कि पत्थरसे पैदा होता है, उस (मांगलिक गिनी जाने वाली हरी भरी) दूबको देखो जो कि गौके रोमोंसे अपनी उत्पत्तिको लिये हुए है, उस लाल कमल को देखो जिसका जन्म कीचड़से है, उस चन्द्रमाको देखो जो समुद्रसे (मन्थन-द्वारा) उद्भूत हुआ कहा जाता है, उस इन्दीवर (नीलकमल) को देखो जिसकी उत्पत्ति गोमयसे बतलाई जाती है। उस अग्निको देखो जो कि काठसे उत्पन्न होती है, उस मणिको देखो जो कि सर्पके फणसे उद्भूत होती है, उस (चमकीले पीतवर्ण) गोरोचनको देखो जो कि गायके पित्तसे तैयार होता अथवा बनता है, और फिर यह शिक्षा लो कि जो गुणी हैं—गुणोंसे युक्त हैं—वे अपने गुणोंके उदय—विकाशके द्वारा स्वयं प्रकाशको—प्रसिद्धि एवं लोकप्रियताको—प्राप्त होते हैं, उनके जन्मस्थान या जातिसे क्या?—वे उनके उस प्रकाश अथवा विकाशमें बाधक नहीं होते। और इसलिए हीन जन्मस्थान अथवा जातिकी बातको लेकर उनका तिरस्कार नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ इसी तरह उस कस्तूरीको देखो जिसका जन्मस्थान विमल नहीं किन्तु समल है—वह मृगकी नाभिमें उत्पन्न होती है, जिसका वर्ण भी वर्णनीय (प्रशंसाके योग्य) नहीं—वह काली कलूटी कुरूप जान पड़ती है। (इसीसे) शोभाकी बात तो उससे दूर वह शरीरमें स्थित अथवा लेपको प्राप्त हुई पंककी शंकाको उत्पन्न करती है—ऐसा मालूम होने लगता है कि शरीरमें कुछ कीचड़ लगा है; इतने पर भी उसमें सकल सुगन्धित द्रव्योंके गर्वको हरने वाला जो परिमल (सातिशायि गन्ध) गुण है उसके मूल्यको कौन आँक सकता है? क्या उसके जन्म जाति या वर्णके द्वारा उसे आँका या जाना जा सकता है? नहीं। ऐसी स्थितिमें जन्म-जाति कुल अथवा वर्ण जैसी बातको लेकर किसीका भी अपने लिये गर्व करना और दूसरे गुणीजनोंका तिरस्कार करना व्यर्थ ही नहीं किन्तु नासमझीका भी द्योतक है ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कविवर भूधरदास और उनकी विचार-धारा

(पं० परमानन्द जैन शास्त्री)

हिन्दीभाषाके जैनकवियोंमें पं० भूधरदासजीका नाम भी उल्लेखनीय है। आप आगरेके निवासी थे और आपकी जाति थी खंडेलवाल। उन दिनों आगरा अध्यात्मविद्याका केन्द्र बना हुआ था। आगरेमें आने जाने वाले सज्जन उस समय वहांकी गोष्ठीसे पूरा लाभ लेते थे। अध्यात्मचर्चाके साथ वहां आचार-मार्गका भी खासा अभ्यास किया जाता था, प्रतिदिन शास्त्रसभा होती थी, सामायिक और पूजनादि क्रियाओंके साथ आत्म-साधनाके मार्ग पर भी चर्चा चलती थी। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और पदार्थसंग्रहरूप पापोंकी निवृत्तिके लिये यथाशक्य प्रयत्न किया जाता था और बुद्धिपूर्वक उनमें प्रवृत्ति न करनेका उपदेश भी होता था, गोष्ठीके प्रायः सभी सदस्यगण उनका परिमाण अथवा त्याग यथाशक्ति करते थे, और यदि उनका त्याग करनेमें कुछ कचाई या अशक्ति मालूम होती थी तो पहले उसे दूर करनेका यथा साध्य प्रयत्न किया जाता था, उस आत्म निर्बलता (कमजोरी) को दूर कर करने की चेष्टा की जाती थी, और उनके त्यागकी भावनाको बलवती बनाया जाता था, तथा उनके त्यागका चुपचाप साधन भी किया जाता था। बाहरके लोगों पर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ता था और वे जैनधर्मकी महत्तासे प्रेरित हो अपनेको उसकी शरणमें ले जानेमें अपना गौरव समझते थे।

जो नवागन्तुक भाई राज्यकार्यमें भाग लेते थे, वे रात्रिमें अवकाश होनेपर धर्मसाधनमें अपनेको लगानेमें अपना कर्तव्य समझते थे। उस समय धर्म और तज्जनित धार्मिक क्रियाकाण्ड बड़ी श्रद्धा तथा आत्म-विश्वासके साथ किये जाते थे, आजकल जैसी धार्मिक शिथिलता या अश्रद्धाका कहीं पर भी आभास नहीं होता था। श्रद्धालु धर्मात्माओंकी उस समय कोई कमी भी नहीं थी, पर आज तो उनकी संख्या अत्यन्त विरल दिखाई देती है। किन्तु लोकदिखावा करनेवाले या सौ-दोसौ रुपया देकर संगमरमरका फर्शादि लगवाकर नाम खुदवानेवाले तथा अपनी इष्ट सिद्धिके लिये बोल कबूल या मान-मनौती रूप अभिमतकी पुष्टिमें सहायक पद्मावती आदि देवियोंकी उपासना करने वाले लोगोंकी भीड़ अधिक दिखाई देती है। ये सब क्रियाएँ जैनधर्मकी निर्मल एवं निस्पृह आत्मपरिणतिसे सर्वथा भिन्न हैं—उनमें जैनधर्मकी उस प्राण-प्रतिष्ठाका अंशभी नहीं है।

कविवरकी आत्मा जैनधर्मके रहस्यसे केवल परिचित ही नहीं थी किन्तु उसका सरस रस उनके आत्म-प्रदेशोंमें भिद चुका था, जो उनकी परिणतिको बदलने तथा सरल बनानेमें एक अद्वितीय कारण था। उन्हें कविता करनेका अच्छा अभ्यास था। उनके मित्र चाहते थे कि कविवर कुछ ऐसे साहित्यका निर्माण कर जांय, जिसे पढ़कर दूसरे लोग भी अपनी आत्म-साधना अथवा जीवनचर्याके साथ वस्तुतत्त्वको समझने में सहायक हो सकें। उन्हीं दिनों आगरेमें जयसिंह सवाई सूबा और हाकिम गुलाबचन्द वहां आए, शाह हरीसिंहके वंशमें जो धर्मानुरागी मनुष्य थे उनकी बार-बार प्रेरणासे कविके प्रमादका अन्त हो गया और कविने सं० १७८१ में पौष कृष्णा १३ के दिन 'शतक' नामका ग्रन्थ बनाकर समाप्त किया[1]।

अध्यात्मरसकी चर्चा करते हुए कविवर आत्म-रसमें विभोर हो उठते थे। उनका मन कभी-कभी वैराग्यकी तरंगों में उछलने लगता था। और कभी-कभी उनकी दृष्टि धन-सम्पदाकी चंचलता, अस्थिरता और शरीर आदिकी उस विनाशीक परिणति पर जाती थी, और जब वे संसारकी उस दुःखमय परिणतिका विचार करते जिसके परिणमनका दृश्य भी कभी-कभी उनकी आंखोंके सामने आ जाया करता था। तो वे यह सोचते ही रह जाते थे कि अब क्या करना चाहिये, इतनेमें मनकी गति बदल जाती थी और विचारधारा उस स्थानसे दूर जा पड़ती थी, अनेक तर्कणाएँ उत्पन्न होतीं और समा जाती थीं अनेक विचार आते और चले जाते थे, पर वे अपने जीवनका कोई अन्तिम लक्ष्य स्थिर नहीं कर पा रहे थे। घरके भी सभी कार्य करते थे, परन्तु मन उनमें वहीं लगता था, कभी प्रमाद सताता था और कभी कुछ। हृदयमें आत्म-

---

१ आगरे में बालबुद्धि भूधर खंडेलवाल, बालकके ख्यालसौं कवित्त कर जानै है। ऐसे ही करत भयो जैसिंघ सवाई सूबा, हाकिम गुलाबचन्द आये तिहि थानै हैं॥ हरीसिंह शाहके सुवंश धर्मरागी नर, तिनके कहेसौं जोरि कीनी एक ठानै है। फिरि-फिर प्रेरे मेरे आलसको अन्त भयो, उनकी सहाय यह मेरो मन मानै है॥ सहरतसै इक्यासिया पोह पाख तमलीन।—तिथितेरस रविवारको, सतक समापत कीन।

—जिन शतक प्रशस्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हितकी जो तरंग उठती थी वह भी विदा हो जाती थी किन्तु संसारके दुःखोंसे छूटनेकी जो टीस हृदयमें घर किये हुए थी वह दूर न होती थी, और न उसकी पूर्तिका कोई ठोस प्रयत्न ही हो पाता था। अध्यात्मगोष्ठीमें जाना और चर्चा करनेका विषय उसी क्रमसे बराबर चल रहा था, उनके मित्रोंकी तो एकमात्र अभिलाषा थी 'पद्यबद्धसाहित्यका निर्माण'। अतः जब वे अवसर पाते कविवरको उसकी प्रेरणा अवश्य किया करते थे।

एक दिन वे अपने मित्रोंके साथ बैठे हुए थे कि वहांसे एक वृद्ध पुरुष गुजरा, जिसका शरीर थक चुका था, दृष्टि अत्यन्त कमजोर थी, दुबला-पतला लठियाके सहारे चल रहा था, उसका सारा वदन कांप रहा था, मुंहसे कभी-कभी लार भी टपक पड़ती थी। बुद्धि शठियासी गई थी। शरीर अशक्त हो रहा था किंतु फिर भी वह किसी आशासे चलनेका प्रयत्न कर रहा था। यद्यपि लठिया भी स्थिरतासे पकड़ नहीं पा रहा था वह वहांसे दस पांच कदम ही आगेको चल पाया था कि दैव-योगसे उसकी लाठी छूट गई और वह बेचारा धड़ामसे नीचे गिर गया, गिरनेके साथही उसे लोगोंने उठाया, खड़ा किया, वह हांप रहा था, चोट लगनेसे कराहने लगा, लोगोंने उसे जैसे-तैसे लाठी पकड़ाई और किसी तरह उसे ले जाकर उसके घर तक पहुँचाया। उस समय मित्रोंमें बूढ़ेकी दशाका और उसकी उस घटनाका जिक्र चल रहा था। मित्रोंमेंसे एकने कहा भाई क्या देखते हो? यही दशा हम सबकी आने वाली है, उसकी व्यथाको वही जानता है, दूसरा तो उसकी व्यथा-का कुछ अनुभव भी नहीं कर सकता, हमें भी सचेत होनेकी आवश्यकता है, कविवर भी उन सबकी बातें सुन रहे थे, उनसे न रहा गया और वे बोल उठे—

आयारे बुढ़ापा मानी सुधि बुधि विसरानी ॥
श्रवनकी शक्ति घटी, चाल चलै अटपटी, देह लटी भूख घटी, लोचन झरत पानी ॥१॥ दाँतनकी पंक्ति टूटी हाडनकी संधि छूटी, कायाकी नगरि लूटी, जात नहिं पहिचानी ॥२॥ बालोंने वरन फेरा, रोगने शरीर घेरा, पुत्रहू न आवै नेरा, औरोंकी कहा कहानी ॥३॥ **भूधर समुझि अब, स्वहितकरेगो कब?** यह गति ह्वै है जब, तब पछतैहै प्रानी ॥४॥

पदके अन्तिम चरणको कविने कई बार पढ़ा और यह कहा कि यही दशा तो हमारी होने वाली है, जिस पर हम कुछ दिलगीर और कभी कुछ हंस से रहे हैं। यदि हम अब नहीं सँभले, न चेते, और न अपने हितकी ओर दृष्टि दी, 'तो मैं कब स्वहित करूँगा'? फिर मुझे जीवनमें केवल पछतावा ही रह जायगा। पर एक बात सोचने की है और वह यह कि यह अज्ञ मानव कितना अभिमानी है, रूप सम्पदाका लोभी, विषय-सुखमें मग्न रहने वाला नरकीट है, बूढ़ेकी दशाको देखकर तरह-तरहके विकल्प करता है, परके बुढ़ापे और उसके सुख-दुखकी चर्चा तो करता है किन्तु अपनी ओर झांककर भी नहीं देखता, और न उसकी दुर्बल दुःखावस्थामें, अनन्त विकल्पोंके मध्य पड़ी हुई भयावह अव-स्थाका अवलोकन ही करता है, और न आशा तृष्णाको जीतने अथवा कम करनेका प्रयत्न ही करता है। हां, चाह-दाहकी भीषण ज्वालामें जलाता हुआ भी अपनेको सुखी मान रहा है। यही इसका अज्ञान है, पर इस अज्ञानसे छुटकारा क्यों नहीं होता! उसमें बार बार प्रवृत्ति क्यों होती है यह कुछ समझमें नहीं आता, यह शरीर जिसे मैं अपना मान कर सब तरहसे पुष्ट कर रहा हूँ एक दिन मिट्टीमें मिल जावेगा। यह तो जड़ है और मैं स्वयं ज्ञायक भावरूप चेतन द्रव्य हूँ, इसका और मेरा क्या नाता, मेरी और इस शरीरकीकी जाति भी एक नहीं है फिरभी चिरकालसे यह मेरा साथी बन रहा है और मैं इसका दास बन कर बराबर सेवा करता रहता हूँ और इससे सब काम भी लेता हूँ। यह सब मैं स्वयं पढ़ता हूँ और दूसरोंसे कहता भी हूँ फिर भी मैंने इन दोनोंकी कभी जुदाई पर कोई ध्यान नहीं दिया और उसे बराबर अपना मानता रहा, इसी कारण स्वहित करनेकी बात दूर पड़ती रही, इन विचारोंके साथ कविवर निद्राकी गोदमें निमग्न हो गये।

प्रातःकाल उठकर कविवर जब सामायिक करने बैठे, तब पुनः शरीरकी जरा अवस्थाका ध्यान आया। और कविवर सोचने लगे—

जब चर्खा पुराना पड़ जाता है, उसके दोनों खूंटे हिलने चलने लग जाते हैं, उर-मदरा खखराने लगता है—आवाज करने लगता है। पंखुड़िया छिद्दी हो जाती हैं, तकली बल खाजाती है—वह नीचेकी ओर नव जाती है, तब सूतकी गति सीधी नहीं हो सकती, वह बारबार टूटने लगता है। आयु-माल भी तब काम नहीं देती, जब सभी अंग चलाचल हो जाते हैं तब वह रोजीना मरम्मत चाहता है अन्यथा वह अपने कार्यमें अक्षम होजाता है। किन्तु नया चरखला सबका मन मोह लेता है, वह अपनी अबाधगतिसे दूसरोंको अपनी ओर आकर्षित करता है, किन्तु पुरातन हो जाने पर उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी वही दशा हो जाती है, और अन्त में वह ईंधनका काम देता है। ठीक इसी प्रकार जब यह शरीर रूपी चर्खा पुराना पड़ जाता है, दोनों पग अशक्त हो जाते हैं। हाथ, मुंह, नाक, कान, आंख और हृदय आदि, शरीरके सभी अवयव जर्जरित, निस्तेज और चलाचल हो जाते हैं तब शब्दकी गति भी ठीक ढंगसे नहीं हो सकती। उसमें अशक्ति और लड़-खड़ानापन आ जाता है। कुछ कहना चाहता है और कुछ कहा जाता है। चर्खेकी तो मरम्मत हो जाती है; परन्तु इस शरीर रूप चर्खेकी मरम्मत वैद्योंसे भी नहीं हो सकती। उसकी मरम्मत करते हुए वैद्य हार जाते हैं ऐसी स्थितिमें आयुकी स्थिति पर कोई भरोसा नहीं रहता, वह अस्थिर हो जाती है। किन्तु जब शरीर नया रहता है, उसमें बल, तेज और कार्य करनेकी शक्ति विद्यमान रहती है। तब वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करता ही है। किन्तु शरीर और उसके वर्णादिक गुणोंके पलटने पर उसकी वही दशा हो जाती है। और अन्तमें वह अग्निमें जला दिया जाता है। ऐसी स्थितिमें हे भूधर! तुम्हीं सोचो, तुम्हारा क्या कर्तव्य है। तुम्हारी किसमें भलाई है। यही भाव कविके निम्नपदमें गुंफित हुए हैं—

चरखा चलता नाहीं, चरखा हुआ पुराना ॥
पग खूंटे दो हाल न लागे, उरमदरा खखराना।
छीदी हुई पांखुड़ी पांसू, फिरै नहीं मनमाना ॥१॥
रसनातकलीने बलखाया, सो अब कैसे खूंटै।
शब्द सूत सूधा नहिं निकसै, घड़ी-घड़ी पल टूटै ॥२॥
आयु मालका नहीं भरोसा, अङ्ग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहें, वैद बाढ़ ही हारे ॥३॥
नया चरखला रंगाचंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुन अगले, अब देखै नहिं आवै ॥४
मोटा महीं कात कर भाई, कर अपना सुरझेरा।
अंत आगमें ईंधन होगा, भूधर समझ सबेरा ॥५॥

कविवर इस पदको पढ़ ही रहे थे कि सहसा प्रातः काल उठकर कविवर जब सामायिक करने बैठे तब उस बुड्ढेकी दशाका विकल्प पुनः उठा, जिसे कविने जैसे तैसे दबाया और नित्यकर्मसे निमिटकर मंदिरजीमें पहुंचे। मंदिरजीमें जानेसे पहले कविवरके मनमें बारबार यह भावना उद्गत हो रही थी कि आत्मदर्शन कितनी सूक्ष्म वस्तु है क्या मैं उसका पात्र नहीं हो सकता? जिन दर्शन करते करते युग बीत गये परन्तु आत्मदर्शनसे रिक्त रहे, यह तेरा अभाग्य है या तेरे पुरुषार्थकी कुछ कमी है। यह सब विकल्पपुंज कविको स्थिर नहीं होने देते थे। पर मंदिरजीमें प्रवेश करते ही ज्यों ही अन्दर पार्श्वप्रभुकी मूर्तिका दर्शन किया त्यों ही दृष्टिमें कुछ अद्भुत प्रसादकी रेखा प्रस्फुटित हुई। कविवरकी दृष्टि मूर्तिके उस प्रशांत रूप पर जमी हुई थी मानों उन्हें साक्षात् पार्श्वप्रभुका दर्शन हो रहा था, परन्तु शरीरकी सारी चेष्टाएँ क्रिया शून्य निश्चेष्ट थीं। कविवर आत्म-विभोर थे—मानों वे समाधिमें तल्लीन हों, उनके मित्र उन्हें पुकार रहे थे, पंडित जी आइये समय हो रहा है कुछ अध्यात्मकी चर्चा द्वारा आत्मबोध करानेका उपक्रम कीजिये पर दूसरोंको कविवरकी उस दशाका कोई आभास नहीं था, हाँ, दूसरे लोगोंको तो इतना ही ज्ञात होता था कि आज कविवरका चेहरा प्रसन्न है। वे भक्तिके प्रवाहमें निमग्न हैं। इतनेमें कविवरके पढ़नेकी आवाज सुनाई दी, वे कह रहे हैं :—

भवि देखि छवि भगवानकी।
सुन्दर सहज सोम आनंदमय, दाता परम कल्याणकी।
नासादृष्टि मुदित मुख वारिज, सीमा सब उपमानकी।
अंग अडोल अचल आसन दिढ़, वही दशा निज ध्यानकी।
इस जोगासन जोगरीतिसौं, सिद्धभई शिव-थानकी।
ऐसैं प्रगट दिखावै मारग, मुद्रा - धात - परवानकी।
जिस देखें देखन अभिलाषा, रहत न रंचक आनकी।
तृषत होत 'भूधर' जो अब ये, अंजुलि अमृतपानकी।

हे भाई! तुम भगवानकी छवीको देखो, वह सहज सुन्दर हैं, सौम्य है, आनन्दमय है, परम कल्याणका दाता है, नासादृष्टि है, मुख कमल मुदित है, सभी अंग अडोल और आसन सुदृढ है, यही दशा आत्म-ध्यानकी है। इसी योगासन और योग्यानुष्ठानसे उन्होंने वसुविध-समिधि जला कर शिव स्थानकी प्राप्ति की है इस तरह धातु-पाषाणकी यह मूर्ति आत्म-मार्गका दर्शन कराती है। जिसके दर्शनसे फिर अन्यके देखनेकी अभिलाषा भी नहीं रहती। अतः हे मधुर! तू तृप्त होकर उस छविका अमृत पान कर, वह तुझे बड़े भारी भाग्यसे मिली है। जिसका विमल दर्शन दुःखोंका नाशक है और पूजनसे पातकोंका समूह गिर जाता है। उसके बिना इस खारी संसार समुद्रसे अन्य कोई पार करने वाला नहीं है[1]। अतः तू उन्हींका ध्यान धर, एक क्षण भी उन्हें मत छोड़। तू

१ देखत दुख भाजि जाति दशों दिश पूजत पातक पुंज गिरै।
इस संसार छार सागरसौं और न कोई पार करै।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोच और समझ, यह नर भव आसान नहीं है, तात,मात, भ्रात, सुत दारा आदि सभी परिकर अपने अपने स्वार्थके ग़र्जी हैं। तू नाहक पराये कारण अपनेको नरकका पात्र बना रहा है। परकी चिंता में आत्म निधिको व्यर्थ क्यों खो रहा है, तू मत भूल, यह दगा जाहिर है। उस ओर दृष्टि क्यों नहीं देता। यह मनुष्यदेह दुर्लभ है, दाव मत चूक। जो अब चूक गए तो केवल पछतावा ही हाथ रहेगा, यह मानव रूपी हीरा तुझे भाग्योदयसे मिला है तू अज्ञानी बन उसके मूल्यको न समझ कर व्यर्थ मत फेंक। नटका स्वांग मत भर, यह आयु छिनमें गल जायगी, फिर करोड़ों रुपया खर्च करने पर भी प्राप्त न होगी, उठ जाग, और स्वरूपमें सावधान हो।

यह माया ठगनी है, झूठी है जगतको ठगती फिरती है, जिसने इसका विश्वास किया वही पछताया, यह अपनी थोड़ी सी चटक मटक दिखा कर तुझे लुभाती है, यह कुल्टा है, इसके अनेक स्वामी हो रहे हैं। परन्तु इसकी किसीसे भी तृप्ति नहीं हुई, इसने कभी किसीके साथ भी प्रेमका बर्ताव नहीं किया। अतः हे भूधर! यह सब जगको भोंदू बनाकर छलती फिरती है। तू इस मायाके चक्करमें व्यर्थ क्यों परेशान हो रहा है। यह माया तेरा कभी साथ न देगी, तू इसे नहीं छोड़ेगा, तो यह तुझे छोड़ कर अन्यत्र भाग जायगी, माया कभी स्थिर नहीं रहती। इस तरहके अनेक दृश्य तूने अपनी इन आंखोंसे देखे हैं, इसकी चंचलता और मेन्मोहकता लुभाने वाली है। जरा इस ओर झुके कि स्वहितसे वंचित हुए। इतना सब कुछ होते हुए भी यह मानव मोहसे लक्ष्मी-की ओर ही झुकता है, स्वात्मःकी ओर तो भूलकर भी नहीं देखता, परको उपदेश देता है, उन्हें मोह छोड़नेकी प्रेरणा करता है, पर स्वयं उसीमें मग्न रहना चाहता है। चाहता है किसी तरह धन इकट्ठा हो जाय तो मेरे सब कार्य पूरे हो जावेंगे और धनाशा पूर्तिके अनेक साधनभी जुटाता है उन्हींकी चिन्तामें रात-दिन मग्न रहता है। रात्रिमें स्वप्न-सागरमें मग्न हुआ अपनेको धनी और वैभवसे सम्पन्न सम-झता है। पर अन्तिम अवस्थाकी ओर उसका कोई लक्ष्य भी नहीं होता। यही भाव कविने शतकके निम्न दो पद्योंमें व्यक्त किये हैं—

चाहत हैं धन होय किसीविध,तो सब काज सरें जियराजी,
गेहचिनायकरूं गहना कछु,व्याहिसुतासुत बांटिए भाजी।
चिंतत यौं दिन जाहिंचले,जम आन अचानक देतदगाजी
खेलत खेलखिलारि गए, रहिजाइ रुपीशतरंजकी बाजी।
तेज तुरंग सुरंग भले रथ, मत्त मतंग उतंग खरे
दास खवास अवास अटा, धनजोर करोरनकोश भरे
ऐसे बढेतौ कहा भयो हेनर,छोरिचले उठिअन्त छरे ह
धाम खरे रहे काम परे रहे दाम डरे रहे ठाम धरे ह

लक्ष्मीके कारण जो अहंकार उत्पन्न होता है यह ज उसके नशेमें इतना मशगूल हो जाता है कि वह अप कर्तव्यसे भी हाथ धो बैठता है। ऐशो अशरतमें वैभव नजारेका जब पागलपन सवार होता है तब वह अचिन्त्य एवं अकल्पनीय कार्य कर बैठता है, जिनकी कभी स्वप्नमें भी आशा नहीं हो सकती। मानो विवेक उसके हृदयसे कूच कर जाता है, न्याय अन्यायका उसे कोई भान नहीं होता, वह सदा अभिमानमें चूर रहता है, कभी कोमल दृष्टिसे दूसरोंकी ओर झांक कर भी नहीं देखता, वह यह भी नहीं सोचता कि आज तो मेरे वैभवका विस्तार है यदि कलको यह न रहा तो मेरी भी इन रंकों जैसी दुर्दशा होगी, मुझे कंगला बन कर पराये पैरोंकी खाक झाड़नी पड़ेगी। भूख, गर्मी शर्दीकी व्यथा सहनी पड़ेगी।

परन्तु फिर भी यह धन और जीवनसे राग रखता है तथा विरागसे कोसों दूर भागता है। जिस तरह खर्गोश अपनी आंखें बन्द करके यह जानता है कि अब सब जगह अन्धेरा हो गया है, मुझे कोई नहीं देखता कविने यही आशय अपने निम्न पद्यमें अंकित किया है :—

'देखो भर जोबनमें पुत्रको वियोग आयो,
तैसैं ही निहारी निज नारी काल मग मैं।
जे जे पुण्यवान जीव दीसत हैं यान हीं पै,
रंक भये फिरैं तेऊ पनही न पगमैं।
एते पै अभाग धन-जीतबसौं धरै राग,
होय न विराग जानै रहूँगौ अलगमैं।
आंखिन विलोकि अन्ध सूसेकी अंधेरी करै,
ऐसे राजरोगको इलाज कहा जग मैं॥ ३५॥

हे भूधर! तू क्या संसारकी इस विषम परिस्थितिसे परिचित नहीं है, और यदि है तो फिर पर पदार्थोंमें रागी क्यों हो रहा है? क्या उन पदार्थोंसे तेरा कोई सुहित हुआ है, या होता है? क्या तूने यह कभी अनुभव भी किया है कि मेरी यह परिणति दुखदाई है, और मेरी भूल हीं मुझे दुःखका पात्र बना रही है। जब संसारका अणुमात्र भी पर-पदार्थ तेरा नहीं है, फिर तेरा उस पर राग क्यों होता है? चित्तवृत्ति स्वहितकी ओर न झुक कर परहितकी ओर क्यों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

झुकती है, तू यह सब जानते हुए भी अनजान सा क्यों हो रहा है यह रहस्य कुछ मेरी समझमें नहीं आता

हे भूधर ! परपदार्थों पर तेरे इस रागका कारण अनन्त-जन्मोंका संचित परमें आत्म-कल्पनारूप तेरा मिथ्या अध्यवसाय ही है जिसकी वासनाका संस्कार तुझे उनकी ओर आकर्षित करता रहता है—बार बार झुकाता है। यही वासना रूप संस्कार तेरे दुःखोंका जनक है। अतः उसे दूर करनेका प्रयत्न करना ही तेरे हितका उपाय है; क्योंकि जब तक परमें तेरी उक्त मिथ्या वासनाका संस्कार दूर नहीं होगा तब तक पर पदार्थोंसे तेरा ममत्व घटना संभव नहीं है। यदि तुझे अपने हितकी चिन्ता है, तू सुखी होना चाहता है, और निजानन्द-रसमें लीन होनेकी तेरी भावना है तो तू उस भ्रामक संस्कार-को छोड़नेका शीघ्र ही प्रयत्न कर, जब तक तू ऐसा प्रयत्न नहीं करता तब तक तेरा वह मानसिक दुःख किसी तरह भी कम नहीं हो सकता, किन्तु वह तेरे नूतन दुःखोंका जनक होता रहेगा।

इस तरह विचार करते हुए कविवरने अपनी भूल पर गहरा विचार किया और आत्म-हितमें बाधक कारणका पता लगा कर उसके छोड़ने अथवा उससे छूटनेकी ओर अपनी शक्ति और विवेककी ओर विशेष ध्यान दिया। कविवर सोचते हैं कि देखो, मेरी यह भूल अनादि कालसे मेरे दुःखों-की जनक होती रही है, मैं बावला हुआ उन दुःखोंकी असह्य वेदनाको सहता रहा हूँ,परंतु कभी भी मैंने उनसे छूटनेका सही उपाय नहीं किया, और इस तरह मैंने अपनी जिन्दगीका बहुभाग यों ही गुजार दिया। विषयोंमें रत हुआ कष्ट पर-म्पराकी उस वेदनाको सहता हुआ भी किसी खास प्रतीतिका कोई अनुभव नहीं किया। दुखसे छूटनेके जो कुछ उपाय अब तक मेरे द्वारा किए गए हैं वे सब भ्रामक थे। मैं अपनी मिथ्याधारणावश अपने दुःखोंका कारण परको समझता रहा और उससे अपने राग-द्वेष रूप कल्पनाजालमें सदा उल-झता रहा, यह मेरी कैसी नादानी (अज्ञानता) थी जिसकी ओर मेरा कभी ध्यान ही नहीं जाता था, अब भाग्योदयसे मेरे उस विवेककी जागृति हुई है जिसके द्वारा मैं अपनी उस अनादि भूलको समझनेका प्रयत्न कर पाया हूँ। अब मुझे यह विश्वास हो गया है कि मैं उन दुःखोंसे वास्तविक छुटकारा पा सकता हूँ। पर मुझे अपनी उस पूर्व अवस्थाका ख्याल बार बार क्यों आता है ? जिसका ध्यान आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह मेरी मानसिक निर्बलता अथवा आत्म कमजोरी है। इस कमजोरीको दूर कर मुझे आत्मबल बढ़ाना आवश्यक है। वास्तवमें जिनभगवान और जिनवचन ही इस असार संसारसमुद्रसे पार करनेमें समर्थ हैं। अतः भव-भवमें मुझे उन्हींकी शरण मिले यही मेरी आन्तरिक कामना है ×जिन वचनोंने ही मेरी दृष्टिको निर्मल बनाया है और मेरे उस आन्तर्विवेकको जागृत किया है जिससे मैं उस अनादि भूलको समझ पाया हूँ। जिनवचन-रूप ज्ञानःशलाकासे वह अज्ञान अन्धकार रूप कल्मष अंजन धुल गया है और मेरी दृष्टिमें निर्मलता आगई है। अब मुझे सांसारिक झंझटें दुखद जान-जान पड़ती है। और जगत के ये सारे खेल असार और झूठे प्रतीत होते हैं। मेरा मन अब उनमें नहीं लगता, यह इन्द्रिय विषय कारे विषधरके समान भयंकर प्रतीत होते हैं। मेरी यह भावना निरन्तर जोर पक-ड़ती जाती है कि तू अब घरसे उदास हो जंगलमें चला जा, और वहाँ मनकी उस चंचल गतिको रोकनेका प्रयत्न कर, अपनी परिणतिको स्वरूपगामिनी बना वह अनादिसे पर-गामिनी हो रही है, उसे अपनी ज्ञान और विवेक ज्योतिके द्वारा निर्मल बनानेका सतत उद्योग कर, जिससे अविचल ध्यानकी सिद्धि हो, जो कर्म कलंकके जलानेमें असमर्थ है ; क्योंकि आत्म-समाधिकी दृढ़ता यथाजात मुद्राके बिना नहीं हो सकती। और न विविध परीषहोंके सहनेकी वह क्षमता ही आ सकती है। कविवरकी इस भावनाका वह रूप निम्न पद्यमें अंकित मिलता है।

कब गृहवाससौं उदास होय वन सेऊँ,
वेऊँ निजरूप गति रोकूं मन-करीकी।
रहि हौं अडोल एक आसन अचल अंग,
सहिहौं परीसा शीत घाम-मेघ-झरीकी ।
सारंग समाज कबधौं खुजै है आमि,
ध्यान-दल-जोर जीतूं सेना मोह-अरीकी ।
एकल विहारी जथाजात लिंगधारी कब,
होऊँ इच्छा चारी बलिहारी हौं वा घरी की ।

कविवरकी यह उदात्त भावना उनके समुन्नत जीवनका प्रतीक है। कविकी उपलब्ध रचनाएँ उनकी प्रथम साधक अवस्था की हैं जिनका ध्यानसे समीक्षण करने पर उनमें कविकी अन्तर्भावना प्रच्छन्न रूपसे अंकित पाई जाती है। जो उनके मुमुक्षु जीवन बितानेकी ओर संकेत करती है।

×इस असार संसारमैं और न सरन उपाय।
जन्म-जन्म हूजौ हमैं, जिनवर धर्म सहाय ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कविवर कहते हैं कि—इसमें कोई सन्देह नहीं कि जरा (बुढ़ापा) मृत्युकी लघु बहन है फिर भी यह जीव अपने हितकी चिन्ता नहीं करता, यह इस आत्माकी बड़ी भूल है। यही भाव उनके निम्न दोहेमें निहित है—

"जरा मौतकी लघुवहन यामें संशयनाहिं।
तौ भी सुहित न चिन्तवै बड़ी भूल जगमाहिं॥"६२

रचनाएँ

कविकी इस समय तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिनशतक, पदसंग्रह और पार्श्वपुराण।

ये तीनों ही कृतियाँ अपने विषयकी सुन्दर रचनाएँ हैं। वह पढ़नेमें सरस मालूम होती हैं, और कविके भावुक हृदयकी अभिव्यंजक हैं। उनमें पार्श्वपुराणकी रचना अत्यन्त सरल और संक्षिप्त होते हुए भी पार्श्वनाथके जीवनकी परिचायक है। जीवन-परिचयके साथ उसमें अनेक सूक्तियाँ मौजूद हैं जो पाठकके हृदयको केवल स्पर्श ही नहीं करतीं; प्रत्युत उनमें वस्तुस्थितिके दर्शन भी होते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए कुछ सूक्ति पद्य नीचे दिये जाते हैं—

उपजे एकहि गर्भसौं सज्जन दुर्जन येह।
लोह कवच रक्षा करे खांडो खंडे देह॥ ५८
दुर्जन दूषित संतको सरल सुभाव न जाय।
दर्पणकी छवि छारसौं अधिकहिं उज्जवल थाय॥ ६८
पिता नीर परसै नहीं, दूर रहे रवियार।
ता अंबुजमें मूढ अलि उरझि मरै अविचार॥ ७१
त्यों ही कुविसन रत पुरुष होय अवसि अविवेक।
हित अनहित सोचे नहीं हिये विसनकी टेक॥ ७२
सज्जन टरै न टेवसौं, जो दुर्जन दुख देय।
चन्दन कटत कुठार मुख, अवसि सुवास करेय॥ १०६
दुर्जन और सलेश्मा ये समान जगमांहि।
ज्यों ज्यों मधुरो दीजिये त्यों त्यों कोप कराहिं॥ ११३
जैसी करनी आचरै तैसो ही फल होय।
इन्द्रायनकी बेलिके आम न लागैं कोय॥ १२०
बढी परिग्रह पोट सिर, घटी न घटकी चाह।
ज्यों ईंधनके योगसौं अगिन करै अति दाह॥ १५०
सारस सरवर तजगए, सूखो नीर निराट।
फलविन विरख विलोककैं पक्षी लागे वाट॥ १६०

कविवरने अपने पार्श्वपुराणकी रचना संवत् १७८९ में आगरामें अषाढ सुदि पंचमीके दिन पूर्ण की है×। और जिनशतककी रचनाका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पदसंग्रह कविने कब बनाया। इसका कोई उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। मालूम होता है कविने उसकी रचना भिन्न भिन्न समयोंमें की है। इस पदसंग्रहमें कविकी अनेक भावपूर्ण स्तुतियोंका भी संकलन किया गया है जो विविध समयों में रची गई हैं।

× संवत् सतरह शतकमैं, और नवासी लीय।
सुदि अषाढतिथि पंचमी ग्रंथ समापत कीय॥

'अनेकान्त' की पुरानी फाइलें

'अनेकान्त' की कुछ पुरानी फाइलें वर्ष ४ से ११ वें वर्षतक की अवशिष्ट हैं जिनमें समाजके लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों द्वारा इतिहास, पुरातत्त्व, दर्शन और साहित्यके सम्बन्धमें खोजपूर्ण लेख लिखे गये हैं और अनेक नई खोजों द्वारा ऐतिहासिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया गया है। लेखोंकी भाषा संयत सम्बद्ध और सरल है। लेख पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। फाइलें थोड़ी ही रह गई हैं। अतः मंगाने में शीघ्रता करें। फाइलों को लागत मूल्य पर दिया जायेगा। पोस्टेज खर्च अलग होगा।

मैनेजर—'अनेकान्त'
वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, दिल्ली।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीबाहुबलीकी आश्चर्यमयी प्रतिमा

[आचार्य श्रीविजयेन्द्रसूरि]

श्रवणबेलगोल नामके ग्राममें अतिविशाल, स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे अद्भुत एक मनुष्याकार मूर्ति है, जो श्रीबाहुबलीकी है यह मूर्ति पर्वतके शिखरपर विद्यमान है और पर्वतकी एक बृहदाकार शिलाको काटकर इसका निर्माण किया गया है। नितान्त एकान्त वातावरणमें स्थित यह तपोरत प्रतिमा मीलों दूरीसे दर्शकका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है।

श्रवणबेलगोल गांव मैसूर राज्यमें मैसूरसे ६२ आर्सिकेरी स्टेशनसे ४२, हासनशहरसे ३२ और चन्नरायपट्टनसे ८ मीलकी दूरीपर है। इसके पासही हलेबेलगोल और कोडी बेलगोल नामके गाँव हैं, उनसे पृथक् दर्शानेके लिए ही इसे श्रमण अर्थात् जैनसाधुओंका बेलगोल कहा जाता है। बेलगोल कन्नडभाषाका शब्द है और इसका अर्थ है : श्वेत सरोवर। इस स्थानपर स्थित एक सरोवरके कारण ही सम्भवतः यह नाम पड़ा है। इस सरोवरके उत्तर और दक्षिणमें दो पहाड़ियाँ हैं और उनके नाम क्रमशः चन्द्र-गिरि और विंध्यगिरि है। इस विंध्यगिरिपर चामुण्डरायने बाहुबली अथवा भुजबलीकी—जिनका लोकप्रसिद्ध नाम गोम्मटस्वामी या गोम्मटेश्वर है—विशाल प्रतिमाका निर्माण कराया। यह मूर्ति पर्वतके चारों ओर १५ मीलकी दूरीसे दिखाई देती है और चन्नरायपट्टनसे तो बहुत अधिक स्पष्ट हो जाती है।

इस विशाल प्रतिमाके आसपास बादमें चामुण्डरायका अनुकरण करके वीर-पाण्ड्यके मुख्याधिकारीने १४३२ ई० में कारकल मूडबिद्रीसे २२ मीलमें गोम्मटेश्वरकी दूसरी मूर्ति बनवाई। कुछ काल बाद प्रधान तिम्मराजने वेणूर-मूडबिद्रीसे १२ मील और श्रवणबेलगोलसे १६० मील में सन् १६०४ ई० में गोम्मटेश्वरकी उसी प्रकारकी एक और प्रतिमा निर्मित करवाई। इन तीनोंके निर्माणकालमें अन्तर होनेपर भी तीनों एक ही सी हैं। इससे जैनकलाकी एक-नियम-बद्धता और अविच्छिन्न प्रवाहका परिचय मिलता है।

प्रतिमा

ये प्रतिमाएँ संसारके आश्चर्योंमेंसे हैं। श्री रमेशचन्द्र मजूमदारके विचारसे तो यह प्रतिमाएं विश्वभरमें अद्वितीय हैं। श्रवणबेलगोलवाली प्रतिमाकी ऊंचाई ५७ फीट है। इसके विभिन्न अंगोंकी मापसे इसकी विशालताका अनुमान किया जा सकता है।

चरणसे कानके अधोभाग तक	५०'-०"
कानके अधोभागसे मस्तक तक	६'-६"
चरणकी लम्बाई	९'-०"
चरणके अग्रभागकी चौड़ाई	४'-६"
चरणका अंगूठा	२'-९"
छातीकी चौड़ाई	२६'-०

यह हलके भूरे ग्रेनाइट पत्थरके एक विशाल खण्डको काटकर बनाई गई है और जिस स्थानपर स्थित है, वहीं पर ही निर्मित की गई थी। कारकल वाली प्रतिमा भी उसी पत्थरकी है और उसकी ऊँचाई ४२ फीट है, अनुमानतः यह २१७४ मन भारी है। इन विशालकाय प्रतिमाओंमें वेणूर वाली प्रतिमा सबसे छोटी है, इसकी ऊँचाई ३७ फीट है। कलात्मक दृष्टिसे तीनों एक होनेपर भी वेणूरकी प्रतिमाके कपोलोंमें गड्ढेसे हैं जो गंभीर मुस्कराहटकासा भाव लिए हैं। सम्भवतः उसके प्रभावोत्पादक भावमें कुछ न्यूनता आ गई है।

श्रवणबेलगोलकी प्रतिमा तीनोंसे सर्वाधिक प्राचीन अथवा विशाल ही नहीं है किन्तु ढालू पहाड़ीकी चोटी पर स्थित होनेके कारण इसके निर्माणमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा होगा। यह मूर्ति उत्तराभिमुख सीधी खड़ी है और दिगम्बर है। जांघोंसे ऊपरका भाग बिना किसी सहारेके है उस स्थल तक वह बल्मीकसे आच्छादित है। जिसमेंसे सांप निकलते प्रतीत होते हैं। उसके दोनों पैरों और भुजाओंके चारों ओर माधवी लता लिपटी हुई है और लता अपने अन्तिम सिरों पर पुष्प-गुच्छोंसे शोभित है। मूर्तिके पैर एक विकसित कमल पर स्थित हैं।

इस प्रतिमाके निर्माता हैं शिल्पी अरिष्टनेमि। उन्होंने प्रतिमा-निर्माणमें अंगोंका निर्माण ऐसे नपे तुले ढंगसे किया है कि उसमें किसी प्रकारका दोष निकाल सकना सम्भव नहीं है। सामुद्रिक शास्त्रमें जिन अंगोंका दीर्घ और बड़ा होना सौभाग्य-सूचक माना जाता है वे अंग वैसे ही हैं;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदाहरणार्थ कानोंका निचला भाग, विशाल कंधे और आजानुबाहु । मूर्त्तिके कंधे सीधे हैं. उनसे दो विशाल भुजाएं स्वाभाविक ढंगसे अवलम्बित हैं हाथकी उंगलियाँ सीधः हैं और अंगूठा ऊपरको उठा हुआ उंगलियोंसे अलग है। पेढ़ू पर त्रिबलियां गलेकी धारियां, घुंघरीले बालोंके गुच्छे आदि स्पष्ट हैं। कलात्मक दृष्टिसे आडम्बर-हीन, सादी और सुडौल होनेपर भी भावव्यंजनाकी दृष्टिसे अनुपम हैं।

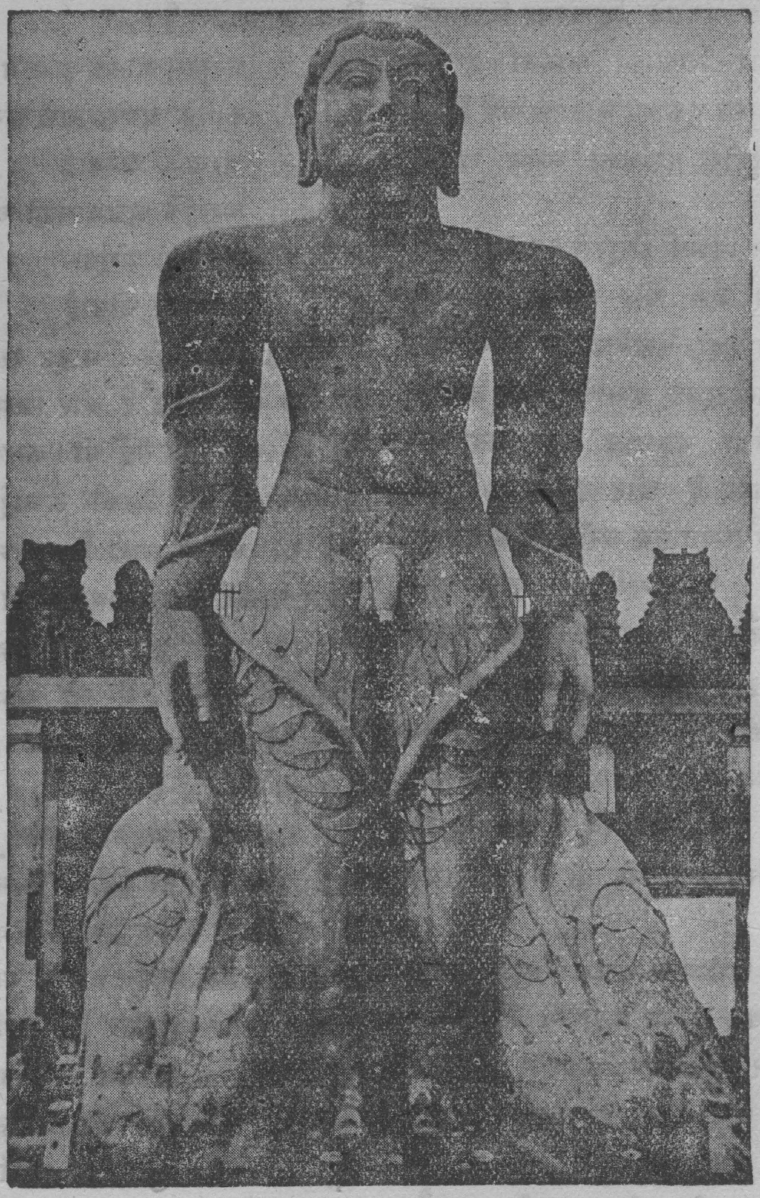

बाहुबली

जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है ये तीनों मूर्तियाँ बाहुबलीकी हैं जो प्रथम तीर्थंकर आदिजिन ऋषभनाथके पुत्र थे अनुश्रुत परम्पराके अनुसार उनकी दो पत्नियां थीं, सुमङ्गला और सुनन्दा। सुमङ्गलासे उत्पन्न जुड़वां का नाम था भरत और ब्राह्मी,* एक लड़का और एक लड़की, सुमङ्गलासे ही अन्य ९८ पुत्र उत्पन्न हुए सुनन्दासे दो सन्तान थीं, बाहुबली और सुन्दरी। जब भगवान ऋषभदेवने केवल-ज्ञान प्राप्तिके लिए गृह-त्याग किया तो उन्होंने अपना राज्य भरतादि सौ पुत्रोंको बांट दिया। बाहुबलीको तक्षशिलाका राज्य मिला। भरतने सम्पूर्ण पृथ्वीका विजय करके चक्रवर्तीका पद धारण तो किया परन्तु भरत चक्रवर्तिका चक्र आयुधशाला (शस्त्रा गार) में प्रवेश नहीं करता था। मन्त्रीसे कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि उनके भाई बाहुबलीने अधीनता स्वीकार नहीं की, इस कारण यह चक्र शस्त्रागारमें प्रवेश नहीं करता। भरतने सन्देश भेजकर बाहुबलीसे अधीनता स्वीकार करनेको कहा, परन्तु बाहुबलीने यह स्वीकार नहीं किया भरतने बाहुबली पर चढ़ाई की, दोनोंमें भयङ्कर युद्ध हुआ, अन्तम विजय लक्ष्मी बाहुबलीको प्राप्त हुई।

विजय प्राप्त कर लेने पर भी बाहुबलीको वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने भगवान् ऋषभदेवके पास जानेका विचार किया। चलते समय यह विचार आया कि मेरे ९८ भाई पहले ही दीक्षा लेकर केवल-ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं वे वहां होंगे और उन्हें वन्दन करना पड़ेगा, इसलिए केवलज्ञान प्राप्त करके ही वहां जाना ठीक रहेगा। यह विचार कर वहीं तपस्यारत हो गए। वर्षभर मूर्तिकी भांति खड़े रहे! वृक्षों में लिपटी लताएं उनके शरीर में लिपट गईं। उन्होंने अपने वितानसे उनके सिरपर छत्र सा बना बना दिया। उनके पैरोंके बीच कुश उग आए जो देखनेमें बल्मीकसे प्रतीत होने लगे। एक वर्ष तक उग्र तप करने पर भी जब उन्हें केवल ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ — क्योंकि उनके मनमें यह भाव विद्यमान था कि मुझे अपने से छोटे भाइयोंको वन्दन करना पड़ेगा—उन्हें प्रतिबोध कराने के हेतु उनकी बहिनें ब्राह्मी और सुन्दरी आयीं और बोलीं—'भाई! मोहके मदोन्मत्त हाथीसे नीचे उतरो। इसने ही तुम्हारी तपस्याको निरर्थक बना

* यह उल्लेख श्वेताम्बर-मान्यताके अनुसार है।
—सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रखा है। यह सुनकर बाहुबलीको ज्योति-मार्ग मिल गया और उन्हें केवल-ज्ञान हो गया*।

यह प्रतिमा इन्हीं बाहुबलीजी की है। उत्तरभारतमें यह इसी नामसे विख्यात है। परंतु दक्षिणमें यह गोम्मटेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन ग्रंथोंमें गोम्मटेश्वर नामका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह नाम आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती द्वारा दिया हुआ है। मूर्तिके निर्माता चामुण्डरायका एक अन्य नाम गोम्मटराय था, कन्नड़ीमें गोम्मटका अर्थ होता है 'कामदेव'; यह नाम ही वस्तुतः कन्नड़ भाषाका है। गोम्मटराय (चामुण्डराय) के पूज्य होनेके कारण बाहुबली गोम्मटेश्वर कहलाए होंगे। दक्षिणी भाषाका शब्द होनेके कारण इसका वहाँ चलन हो गया।

चामुण्डराय

चामुण्डराय गंगवंशके राजा राचमल्लके मन्त्री और सेनापति थे। इससे पूर्व चामुण्डराय गंगवंशीय मारसिंह द्वितीय और उनके उत्तराधिकारी पांचालदेवके भी मन्त्री रह चुके थे। पांचालदेवके बाद ही राचमल्ल गद्दी पर बैठे थे। मारसिंह द्वितीयका शासनकाल चेर, चोल, पाण्ड्यवंशों पर विजय प्राप्तिके लिए प्रसिद्ध है। मारसिंह आचार्य अजितसेनके शिष्य थे और अपने युगके बड़े भारी योद्धा थे और अनेक जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया था। राचमल्ल भी मारसिंहकी भांति जैनधर्म पर श्रद्धा रखते थे।

चामुण्डराय तीन तीन नृपतियोंके समय अमात्य रहे। इन्हींके शौर्यके कारण ही मारसिंह द्वितीय वज्जल, गोनूर और उच्छंगीके रणक्षेत्रोंमें विजय प्राप्त कर सके। राचमल्लके लिए भी उन्होंने अनेक युद्ध जीते। गोविन्दराज, वेंकोंडुराज आदि अनेक राजाओंको परास्त किया। अपनी योग्यता के कारण इन्हें अनेक विरुद प्राप्त हुए। श्रवणबेलगोलके शिलालेखोंमें चामुण्डरायकी बहुत प्रशंसा है। इन लेखोंमें अधिकांशतः युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेका ही उल्लेख है। परन्तु जीवनके उत्तरकालमें चामुण्डराय धार्मिक कृत्योंमें प्रवृत्त रहे। वृद्धावस्थामें इन्होंने अपना जीवन गुरु अजितसेनकी सेवामें व्यतीत किया।

चामुण्डराय द्वारा निर्मित इस प्रतिमाके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। बाहुबलि-चरित्र नामक संस्कृत काव्यके अनुसार राचमल्लकी राजसभामें चामुण्डरायने एक पथिक-व्यापारीसे यह सुना कि उत्तरमें पौदनपुरी स्थानपर भरत द्वारा स्थापित बाहुबलीकी एक प्रतिमा है। उसने अपनी माता समेत उस प्रतिमाके दर्शनका विचार किया। परन्तु, पौदनपुरी जाना अत्यन्त दुष्कर समझ कर एक सुवर्णबाणसे पहाड़ीको छेदकर रावण द्वारा स्थापित बाहुबलीकी प्रतिमाका पुनरुद्धार किया। देवचन्द्र द्वारा रचित कनाड़ी भाषाकी एक नवीन पुस्तकमें भी थोड़े अन्तरसे यही कथा आयी है इसके अनुसार इस प्रतिमाके सम्बन्धमें चामुण्डरायकी माताने पद्मपुराणका पाठ सुनते समय यह सुना कि पौदनपुरीमें बाहुबलीकी प्रतिमा है। इस कथासे भी यह प्रतीत होता है कि चामुण्डरायने यह प्रतिमा नहीं बनवाई अपितु इस पहाड़ पर एक प्रतिमा पहलेसे विद्यमान थी, चामुण्डरायने शिल्पियोंसे इस प्रतिमाके सब अंगोंको ठीक ढंगसे सुडौल बनवाकर सविधि स्थापना और प्रतिष्ठा कराई। श्रवणबेलगोलमें भी कुछ इसी प्रकारकी लोक-कथाएं प्रचलित हैं और उनसे ऊपरकी किंवदन्तियोंके अनुसार प्रतीत होता है कि इस स्थान पर एक प्रतिमा थी जो पृथ्वीसे स्वतः निर्मित थी।

प्रतिमा-निर्माण काल

जिस शिलालेखमें चामुण्डरायने अपना वर्णन किया है उसमें केवल अपनी विजयोंका उल्लेख किया है किसी धार्मिक कृत्यका नहीं। यदि मारसिंह द्वितीयके समय उसने प्रतिमाका निर्माण कराया होता तो उस शिलालेखमें अवश्य इसका निर्देश रहता। मारसिंह द्वितीयकी मृत्यु ९७५ ई० में हुई। चामुण्डरायने अपने ग्रन्थ चामुण्डरायपुराणमें भी इस प्रतिमाके सम्बन्धमें कोई निर्देश नहीं किया। इस पुस्तकका रचनाकाल ९७८ ई० है। राजमल्ल द्वितीयने ९८४ ई० तक राज्य किया। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रतिमाका निर्माण ९७८ और ९८४ ई० के बीच हुआ होगा।

बाहुबलि-चरितमें आये एक श्लोकके अनुसार चामुण्डरायने बेलगुल नगरमें कुम्भलग्नमें, रविवार चैत्र शुक्ल पंचमीके दिन विभव नाम कल्कि षट्शताब्द संवत्सरके प्रशस्त मृगशिरा नक्षत्रमें गोमटेश्वरकी स्थापना की।

इस श्लोकमें निर्दिष्ट समय पर अबतक ज्योतिषके

* यह सब कथन श्वेताम्बर-मान्यताके अनुसार है।
—सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिसाबसे जो कार्य हुआ है उसके अनुसार ९७८ और और ९८४ के बीच ३ अप्रैल ९८० ई० को मृगशिरा नक्षत्र था और पूर्व दिवससे (चैत्रकी बीसवीं तिथि) शुक्ल पक्षकी पंचमी लग गई थी और रविवारको कुम्भलग्न भी था। परन्तु कल्कि संवत् ६०० ई० सन्का १०७२ होता है और इस सन्में चैत्रशुक्ल पक्षकी पंचमी तिथि चैत्रके तेईसवें दिन शुक्रवार पड़ता है जो उपर्युक्त श्लोकमें निर्दिष्ट समयके प्रतिकूल है। परन्तु यह मान लिया गया है कि कल्कि संवत् ६०० का अभिप्राय छटी शताब्दि है, संस्कृतका इसके अनुरूप पद है: 'कल्क्यब्दे षट्शताख्ये'। विभवको ८वां वर्ष मान लेनेसे ५०८ कल्क्यब्द बनता है जो कि ईस्वी सन् का ९८० बन जाता है। इस गणनासे ऊपरकी संगति बैठ जाती है और प्रतिमाका स्थापनाकाल २ अप्रैल ९८० ई० निश्चित होता है। (हिन्दुस्थान से)

गरीबी क्यों ?

(गरीबीके दस कारणों की खोज और व्याख्या)

'गरीबी क्यों' इस प्रश्नका सीधा-सा और बंधाबंधाया उत्तर दिया जाता है 'पूंजीवादी शोषणके कारण गरीबी है।' इस उत्तरमें सचाई है और काफी सचाई है, फिर भी कितने लोग इस सचाईका मर्म समझते हैं मैं नहीं कह सकता। पूंजीवादसे गरीबी क्यों आती है इसकी छानबीन भी शायद ही कोई करता हो। महर्षि मार्क्सने मुनाफा या अतिरिक्त मूल्यका जो विश्लेषण किया है वही रट-रटाया उत्तर बहुतसे लोग दुहरा देते हैं। पर यह सिर्फ दिशा-निर्देश है उससे गरीबीके सब या पर्याप्त कारणों पर प्रकाश नहीं पड़ता, सिर्फ गरीबीके विष-वृक्षके बीजका पता लगता है। पर वह बीज अंकुरित कैसा होता है फूलता फलता कैसे है इसका पता बहुतोंको नहीं है।

साधारणतः शोषकोंमें मिलमालिकों, बैंकरों तथा बड़े-कारखानेदारोंको गिना जाता है, और यह ठीक भी है। छोटे-छोटे कारखाने जिनमें दस-दस पाँच-पाँच आदमी काम करते हैं, उनमें मालिक तो उतना ही कमा पाता है जितना कि उस कारखानेमें एक मैनेजर रख दिया जाय और उसे वेतन दिया जाय। पूंजीवादी प्रथा न होने पर भी उन छोटे-छोटे कारखानोंमें मजदूरोंको आमदानीका उतना ही हिस्सा मिलेगा जितना आज मिलता है। इसलिये उनका शोषकोंमें गिनना ठीक नहीं। बाकी किसान, मजदूर, दुकानदार, अध्यापक, लेखक, कलाकार आदि भी शोषकों-में नहीं गिने जाते और है भी यह ठीक। बल्कि इनमेंसे अधिकाँश शोषित ही होते हैं। सच पूछा जाय तो इस प्रकार देशकी जनतामें शोषकोंका अनुपात हजारमें एकके हिसाबसे पड़ता है। ऐसी हालतमें यह कहना कठिन है कि एक आदमीका शोषण इतना अधिक हो जाता है कि वह ९९९ आदमियोंको गरीब करदे।

अभी मैं एक बड़ी भारी कपड़ेकी मिलमें गया। पता लगा कि यहाँ साधारणसे साधारण मजदूरको कम-से-कम ७५) माह मिलता है। और किसी किसीको ३००) माह से भी अधिक मिलता है। तब मैंने सोचा कि इन मजदूरों-की टोटल आमदनी प्रति व्यक्ति १००) माहवार समझना चाहिये।

अब मान लीजिये कि मजदूर तो १००) माह पाता है और मालिक पच्चीस हजार रुपया माह लेकर घोर शोषण और अन्याय करता है। अगर मालिक यह पच्चीस हजार रुपया न ले और यह रुपया मजदूरोंमें बंट जाय तो पाँच हजार मजदूरोंमें पच्चीस हजार रुपया बंटनेसे हरएक मज-दूरको सौ के बदले एक सौ पाँच रुपया माहवार मिलने लगे। निःसन्देह इससे मजदूरकी आमदानीमें तो अन्तर पड़ेगा। पर क्या यह अन्तर इतना बड़ा है कि १००) में मजदूरको गरीब कह दिया जाय और १०५ में अमीर कह दिया जाय? क्या देशकी अमीरीकी आदर्शमें और आजकी गरीबीमें सिर्फ पाँच फीसदीका ही फर्क है।

यदि देशके अमीरोंकी सब सम्पत्ति गरीबोंमें बांट दी जाय तब भी क्या गरीबोंकी सम्पत्ति ५ फीसदीसे अधिक बढ़ सकती है? अगर हम पैंतीस करोड़ रुपया हर साल अमीरोंसे छीनकर पैंतीस करोड़ गरीबोंमें बांट दे तो सबको एक-एक रुपया मिल जायगा। इस प्रकार सालमें एक-एक रुपएकी आमदनीसे क्या गरीबी अमीरोंमें बदल जाएगी। पैंतीस करोड़की बात जाने दें पर वह रुपया सिर्फ साढ़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीन करोड़ आदमियोंमें ही बांटे तो भी दस-दस रुपए हिस्सोंमें आयेंगे इससे भी गरीबी अमीरीमें तब्दील नहीं हो सकती। तब सम्पत्ति दानयज्ञमें हर साल दस बीस करोड़ रुपया पानेसे भी क्या होगा ?

जो चोर दानके द्वारा गरीब देशको अमीर बनाना चाहते हैं वे अर्थ शास्त्रकी वर्णमाला भी नहीं जानते ऐसा कह देना अपमान जनक होगा, जो लोग विचारकतामें नहीं संस्कारमान्य यश प्रतिष्ठामें ही बड़प्पन समझते हैं वे इसे छोटे मुंह बड़ी बात समझेंगे, कुछ लोग इसे धृष्टता कहेंगे इसलिए यह बात न कहकर इतना तो कहना चाहिए कि ये लोग अर्थशास्त्रके मामलेमें देशको काफी गुमराह कर रहे हैं न वे गरीबीके कारणोंको ढूंढ कर उसका निदान कर पा रहे हैं न उसका इलाज।

दस कारण

शोषणका प्रत्यक्ष परिणाम विषम वितरण भी गरीबीका कारण है, पर यह एक ही कारण है, वह भी इतना बड़ा नहीं कि अन्य कारण न हों तो अकेला यही कारण देशको गरीब बनादे। विषम वितरण और शोषण अमेरिकामें होने पर भी अमेरिका संसारका सबसे बड़ा धनवान देश है। इसलिए सिर्फ गरीबीके लिए इसी पर सारा दोष नहीं मडा जा सकता। हाँ! कुछ कारण इसके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परिणाम स्वरूप अवश्य हैं।

खैर! हमें देशकी और व्यक्तिकी गरीबीके सब कारणों पर विचार करना है और उनमेंसे जितने कारण दूर हो सकें दूर करना है। और यह भी सोचना है कि गरीबीके किस कारणको दूर करनेका क्या परिणाम होगा।

गरीबीके दस कारण हैं—

१. अश्रम	(नोशिहो)
२. श्रमानुपलब्धि	(शिहोनोशिनो)
३. कामचोरी	(कज्जो चुरो)
४. असहयोग	(नोमाजो)
५. वृथोत्पादकश्रम	(नकंजेजशिहो)
६. अनुत्पादक श्रम	(नोजेजशिहो)
७. पापश्रम	(पाप शिहो)
८. अल्पोत्पादक श्रम	(येजेज शिहो)
९. अनुत्पादकार्जन	(नोजेज अर्नो)
१०. अनुचित वितरण	(नोधिञ्च सुरो)

१. अश्रम—बहुतसे लोग श्रम करनेके योग्य होने पर भी श्रम नहीं करते। इसलिए उनसे जो सुख-सुविधा या सुख-सुविधाका सामान पैदा हो सकता है वह नहीं हो सकता है वह नहीं हो पाता। बालक और वृद्धोंको छोड़ दिया जाय तो भी इस श्रेणीमें कई करोड़ आदमी पाये जाते हैं।

(क)—समाजकी कोई सेवा न करने वाले युवक साधुवेषी, जो लाखोंकी संख्यामें हैं। वे सिर्फ भजन पूजा करते हुए आशीर्वाद देते हुए मुफ्तमें खाते हैं।

(ख)—भिखारी काम करनेकी योग्यता रखते हुए भी किसी न किसी बहानेसे भीख माँगते हैं। इनसे भी कोई उत्पादन नहीं होता।

(ग)—पैत्रिक सम्पत्ति मिल जानेसे, या दहेज आदिमें सम्पत्ति मिल जानेसे जो पड़े पड़े खाते हैं और कुछ उत्पादन नहीं करते। ऐसे लोग भी हजारोंकी संख्यामें हैं।

(घ)—घरमें चार दिनको खानेको है, मजदूरी क्यों करें, इस प्रकारका विचार करने वाले लोग बीच-बीचमें काम नहीं करते, इससे भी उत्पादन कम होता है। मजदूर संगठन करके अधिक मजदूरी ले लेते हैं और फिर कुछ दिन काम नहीं करते।

(ङ)—चाटुकार चापलूसी करके कुछ माँगने वाले लोग भी मुफ्तखोर हैं। राजाओंके पास ऐसे लोग रहते हैं या रहते थे जो हुजूरकी जय हो आदि बोल कर हुजूरको खुश करके चैनसे खाने पीनेकी सामग्री पा जाते हैं। यद्यपि इन मुसाहितोंकी चापलूसोंकी टोलियाँ कम होती जाती हैं पर अभी भी हैं।

इस प्रकार कई करोड़ आदमी हैं जो कोई उत्पादन श्रम नहीं करते। अगर ये काममें लगें तो देशकी सुख-सम्पत्ति काफी बढ़ जाये।

२. श्रमानुपलब्धि—श्रम करनेकी तैयारी होने पर भी श्रम करनेका अवसर नहीं मिलता। इस बेकारीके कारणसे काफ़ी उत्पादन रुकता है और देश गरीब रहता है। बेकारीका कारण यह नहीं है कि देशमें काम नहीं है। काम तो असीम पड़ा है। पीढ़ियों तक सारी जनता काममें जुटी रहे तो भी काम पूरा न होगा, इतना पड़ा है। न अधिकांश लोगोंके पास रहने योग्य ठीक मकान हैं न सब जगह यातायातके लिये सड़कें हैं, न भरपूर कपड़े हैं, न घरमें जरूरी सामान है, न सबको उचित शिक्षण मिल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाता है, न कलाओंका विकास हो पाता है, न चिकित्सा-की भरपूर व्यवस्था है, न सबके पास यातायातके भरपूर साधन हैं, इत्यादि असीम काम पड़ा है, इसलिए कामके अभावमें बेकारी नहीं है। एक तरफ काम पड़ा है, दूसरी तरफ कामकी सामग्री पड़ी है, तीसरी तरफ काम करने वाले बेकार बैठे हैं, इन तीनोंको मिलानेकी कोई आर्थिक व्यवस्था नहीं है यही बेकारीका कारण है जिससे असीम उत्पादन रुका पड़ा है और देश गरीब है।

३. कामचोरी—काम करने वाले नौकरोंमें उत्तेजनाका कोई कारण न होने से वे किसी तरह समय पूरा करते हैं कम-से-कम काम करते हैं, किसी न किसी बहानेसे समय बर्बाद करते हैं, मन्द गतिसे काम करते हैं इसलिये उत्पादन कम होता है। कामका ठेका दिया जाय या नौकरोंको हिस्सेदारकी तरह आमदनीमेंसे हिस्सा दिया जाय तो इस तरह समयकी बर्बादी न हो, न मन्दगतिसे काम हो। उत्पादन बढ़े। इसलिए किसी न किसी तरह-का संघीकरण करना जरूरी है।

४. असहयोग—व्यक्तिवादी आर्थिक व्यवस्था होनेसे काममें दूसरोंका उचित सहयोग नहीं मिलता इसलिए कार्य ठीक ढंगसे और ठीक परिमाणमें नहीं हो पाता, इसलिए उत्पादन काफी घट जाता है। जानकारोंकी सलाह न मिल सकना, यातायातके ठीक साधन न मिलना, या जरूरत समझी जानेसे काफी महंगे और अधूरे साधन मिलना, मजदूरोंका अड़कर बैठ जाना आदि असहयोगके कारण उत्पादन घटता है। व्यक्तिवादका यह स्वाभाविक पाप है।

५. वृथोत्पादकश्रम—श्रम करने पर उत्पादन तो होता है पर वह उत्पादन किसी कामका नहीं होता या उचित कामका नहीं होता। एक आदमी काफी मेहनत करके दवाइयाँ बनाता है, पर दवाई किसी कामकी नहीं होती सिर्फ किसी तरह दवाई बेच कर पेट पाल लिया जाता है। इसी तरह कोई बेकारके खिलौने बना कर पेट पालने लगता है, ये सब वृथोत्पादक श्रम हैं इनसे मेहनत तो होती है पर कुछ लाभ नहीं होता बल्कि कुछ सामग्री बेकार नष्ट हो जाती है। व्यक्तिवादकी प्रधानतामें जब आदमीको कोई धन्धा नहीं मिलता वह ऐसे वृथोत्पा-दक श्रम करके गुजर करने लगता है। जरूरी काम पड़े रहते हैं और बेज़रूरी काम श्रम और साधनोंकी बर्बादी करने लगते हैं।

६. अनुत्पादकश्रम—जिसमें मेहनत तो की जाय पर उससे उत्पादन या लाभ कुछ न हो वह अनुत्पादक श्रम है।

बीमारीका इलाज करनेके लिए जप, होम, बलिदान, परिक्रमा तथा पूजा आदिमें धन और शक्ति बर्बाद करना या पानी बरसाने आदिके लिये ऐसे कार्य करना, जिससे शारीरिक शक्तिका कोई उपभोग नहीं ऐसी शारीरिक शक्ति बढ़ानेके लिये मेहनत करना जैसे पहलवानी आदि, शांतिकी ठीक योजनाओंके बिना विश्व शान्ति यज्ञ करना, आदि अनुत्पादक श्रम हैं।

मनुष्यजातिकी दृष्टिसे सैनिकताके कार्य भी अनु-त्पादक श्रम हैं। फौजी बजटका बढ़ना भी देशकी गरीबीको निमन्त्रण देना है।

स्वास्थ्यके लिये व्यायाम करना, मनकी शांतिके लिये प्रार्थना आदि करना, अनुत्पादक श्रम नहीं है। क्योंकि जिस शारीरिक और मानसिक लाभके लिये ये किये जाते हैं। उस लाभके ये उचित उपाय हैं। अनुत्पा-दक श्रममें ऐसे अनुचित कार्य किए जाते हैं जो अपने लक्ष्यके उपाय साबित नहीं होते। अनुत्पादमश्रममें देशका उत्पादन तो बढ़ता ही नहीं किन्तु उत्पादनके निमित्त धन-जन-शक्तिकी बर्बादी होती है।

७. पापश्रम—चोरी डकैती जुआ आदि कार्योंमें जो श्रम किया जाता है उससे पाप तो होता ही है पर देशमें उत्पादन कुछ नहीं बढ़ता। जिनका धन जाता है वे तो गरीब होते ही हैं पर जिन्हें धन मिलता है वे भी मुफ्तके धनको जल्दी उड़ा डालते हैं। इस तरह के पापकार्य जिस देशमें जितने अधिक होंगे देशकी गरीबी उतनी ही बढ़ेगी।

८. अल्पोत्पादकश्रम—जिस श्रमसे जितना पैदा होना चाहिये उससे कम पैदा करना, अर्थात्-थोड़े कार्यमें अधिक लोगोंका लगना या अधिक शक्ति लगना अल्पोत्पादकश्रम है। जैसे—

जो कार्य मशीनोंके जरिये अधिक मात्रामें पैदा किया जा सकता है उसे कोरे हाथोंसे करना। इससे अधिक आदमी अधिक शक्ति खर्च करके कम पैदा कर पायेंगे। जैसे मिलोंकी अपेक्षा हाथसे सूत कातना। इसमें अधिक आदमियोंके द्वारा थोड़ा कपड़ा पैदा होता है, कई ज्यादा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगती है माल भी खराब बनता है। इसी प्रकार हाथसे कागज तैयार करना। इसमें भी समय ज्यादा लगता है और खराब माल तैयार होता है। मनुष्यकी शक्ति अधिक लगती है। जिस कामके लिये मशीनें नहीं हैं या जहां मशीनें नहीं मिल सकती वहाँकी बात दूसरी है पर बेकारी हटनेके नाम पर मशीनोंका बहिष्कार करना देशको कंगाल बनाना है। सबको जीविका देनेकी आर्थिक योजना न बनाकर हस्तोद्योगके नामपर व्यक्तिवाद पनपना देश और दुनियाके साथ दुश्मनी करना है, उन्हें कंगाल बनाना है।

जहाँ अमुक तरहका माल बेचनेके लिये पांच दुकानोंकी जरूरत है वहाँ पच्चीस दूकान बन जाना भी अल्पोपादक-श्रम है। क्योंकि ग्राहकोंकी सुविधा तो उतनी पैदा की जायगी पर श्रमखर्च होगा पाँचकी जगह पच्चीस का। इस प्रकार हर एकका श्रम अल्पोत्पादक होगा। व्यक्ति-वादमें यह हानि स्वाभाविक है; क्योंकि किस किस काममें कहाँ कितने आदमियोंको लगानेकी जरूरत है इसकी कोई सामाजिक व्यवस्था तो होती नहीं है, जिसे जो करना होता है अपनी इच्छासे करने लगता है। इसलिये एक दुकानकी जगह चार दुकानदार एक प्रेसकी जगह चार प्रेस बन जाते हैं, ग्राहक एककी जगह चार जगह बट जाते हैं इसलिये दुकानको अधिक मुनाफा लेना पड़ता है, फिर भी बहुत अधिक नहीं लिया जा सकता है इसलिये उनको भी गरीबीमें रहना पड़ता है। इस प्रकार ग्राहक भी नुकसान उठाते हैं और दुकानदार भी नुकसान उठाते हैं पर व्यक्तिवादमें आज इसका इलाज नहीं है।

देशमें अन्नोत्पादनके लिये जितने आदमियोंकी जरूरत है उससे अधिक आदमियोंका उसी काममें खपाना भी अल्पोत्पादकश्रम है। अमेरिकामें एक समय अस्सी फ़ीसदी आदमी खेतीमें लगे थे फल यह था कि अन्य उद्योग पनप नहीं पाते थे और देश गरीब था, अब पच्चीस फीसदी आदमी ही खेतीमें लगे हैं और देश अमीर है। जो लोग किसी भी एक काममें जरूरतसे ज्यादा आदमियोंको खपाने-की योजना बनाते हैं व अल्पोत्पादक श्रमसे देशको कंगाल बनाते हैं। सम्भवतः वे शुभ कामनासे भी ऐसा करते होंगे पर उनकी शुभ कामनाएँ देशको कंगाल बनानेकी तरफ ही प्रेरित करती हैं। अंग्रेजीकी यह कहावत बहुत ठीक है कि 'नरकका रास्ता शुभकामनाओंसे पट पड़ा है' और अल्पोत्पादक श्रमके समर्थकोंपर यह कहावत पूरी तरह लागू होती है।

बेकारी दूर करनेके दो उपाय हैं, एक तो अधिक आदमियोंसे अधिक उत्पादन करना, दूसरा पुराने या अल्प उत्पादनमेंही अधिक आदमियोंको खपा देना। पहिला तरीका समाजके वैभवका है, दूसरा समाजकी गरीबी या कंगालीका।

९. अनुत्पादकार्जन—कुछ लोग ऐसा काम करते हैं जिससे देशमें धनका या सुविधाका या गुणका उत्पादनतो नहीं बढ़ता फिर भी व्यक्तिगत रूपमें लोग कुछ कमा लेते हैं। यह अनुत्पादकार्जन है। इससे कुछ लोगोंकी शक्ति व्यर्थ जाती है। जो शक्ति कुछ उत्पादन कर सकती थी वह अनुत्पादक कार्योंमें खर्चा हो जानेसे देशकी गरीबी ही बढ़ाती है।

सट्टा आदि इसी श्रेणी का है। इससे खींचतान कर कृत्रिमरूपमें बाजार ऊंचा-नीचा किया जाता है, और इसी उतार चढ़ावमें सटोरिये लोग व्यर्थ ही काफ़ी सम्पत्ति झपट लेते हैं। यह सम्पत्ति ग्राहकों और उत्पादकोंके पाकिटसे छिनती है और कुछ मुफ्तखोरोंको अमीर बनाती है। देशका इससे कोई लाभ नहीं, श्रमका तथा धनका नुकसान ही है।

बीमा व्यवसाय भी इसी कोटिका है। इससे देशमें कुछ उत्पादन नहीं बढ़ता, बल्कि कभी कभी काफी नुकसान होता है। जैसे सम्पत्तिका अधिक बीमा कराके, सम्पत्तिमें इस ढंगसे आग लगा देना जो स्वाभाविक लगी हुई कहलाये, आग बुझाने की तत्परतासे कोशिश न करना, इस प्रकार सम्पत्ति नष्ट करके अधिक पैसे वसूल कर लेना। बीमा कम्पनियाँ ऐसे बदमाशोंका पैसा चुका तो देती है पर यह आता कहां से है ? दूसरे बीमावालोंके शोषणमें से ही यह पैसा दिया जाता है, यदि बीमा-कम्पनीका दिवाला निकल जाये तो शेयर होल्डरोंके पैसेसे यह चुकाना कहलाया। मतलब यह कि बीमा कम्पनियाँ बहुतसे ईमानदारोंको लुभाकर उनसे पैसा छीनती हैं और कुछ भले बुरोंको बांट देती हैं और खुद भी बीचमें दलाली खा जाती हैं। इससे इतने लोगोंकी शक्ति व्यर्थ तो जाती ही है, उत्पादन भी कुछ नहीं होता है, साथ ही समय समय पर लाखोंकी सम्पत्ति जानबूझ-कर बर्बाद की जाती है, यहां तक कि कभी कभी जीवन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीमामें मन्दविषसे या आकस्मिक कारणोंके बहाने जानें तक ले ली जाती हैं। पर यह व्यक्तिवादका अनिवार्य पाप बना हुआ है। यह भी अनुत्पादकार्जन है।

विज्ञापनबाजी और दलालीके भी बहुतसे काम अनुत्पादकार्जन हैं। इससे उत्पादन तो नहीं बढ़ता, सिर्फ व्यक्तिवादकी लूट खसौटमें ये बिचभैये भी कुछ लूट खसोट लेते हैं। यह भी व्यक्तिवादका अनिवार्य पाप बना हुआ है।

यह सब अनुत्पादकार्जन है इससे देश गरीब ही होता है। आवश्यक सीमित कलाकृतियाँ आनंद पैदा करनेके कारण अनुत्पादकार्जनमें न गिनी जायंगी।

१०. अनुचित वितरण—मेहनत और गुणके अनुसार फल न मिलना, यह अनुचित वितरण है। इससे एक तरफ मुफ्तखोरी विलास आदि बढ़ता है दूसरी तरफ अनुत्पादहीनता बढ़ती है। बेकारी शोषण आदि इसीके परिणाम हैं। इसे ही पूंजीवादका पाप कहते हैं। जो कि व्यक्तिवादका एक रूप है। इससे बेकारी फैलती है। मजदूरोंमें उत्साह नहीं होता, इससे उत्पादन रुकता है और विषम वितरणसे एक तरफ माल सड़ता है दूसरी तरफ मालके लिये लोग तड़पते रहते हैं इस प्रकार इससे देश कंगाल होता है।

किसी देशकी या मानव समाजकी गरीबीके ये दस कारण हैं। हमें इन सभी कारणोंको दूर करना है। किसी एक ही कारणको दूर करनेकी बात पर जोर देने से, एक कारण तो दूर किया जाता है पर दूसरे कारणको बुला लिया जाता है। जैसे साम्यवादी लोग विषम वितरणको हटानेकी बात कहकर अल्पोत्पादक श्रमको इतना अधिक बुला लेते हैं कि विषम वितरणकी गरीबीसे सैकड़ों गुणी गरीबी अल्पोत्पादकश्रमसे बढ़ जाती हैं। इसलिये गरीबीके दसों कारणोंको दूर करना चाहिये और एक कारण हटानेका विचार करते समय इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि उससे गरीबीका दूसरा कारण उभड़ न पड़े या इतना न उभड़ पड़े कि एक तरफ जितनी गरीबी दूरकी जाय दूसरी तरफसे उससे अधिक गरीबी बुला ली जाय।

दुर्भाग्यसे इस समय देशमें गरीबीके सब कारणों पर विचार करने वाले राजनीतिक लोगोंकी कमी है। किसी एक दो कारणों पर जोर देनेवाले तथा दूसरे कारणोंको उभाड़ने वाले कार्यक्रमही यहाँ चल रहे हैं। यह देशका दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्यको दूर करनेके लिये सर्वतोमुख दृष्टिसे, विवेकसे और निरतिवादसे काम लेना चाहिये।

—'संगम' से

वीरसेवामन्दिरका नया प्रकाशन

पाठकोंको यह जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि आचार्य पूज्यपादका 'समाधितन्त्र और इष्टोपदेश' नामकी दोनों आध्यात्मिक कृतियाँ संस्कृतटीकाके साथ बहुत दिनोंसे अप्राप्य थी, तथा मुमुक्षु आध्यात्म प्रेमी महानुभावोंकी इन ग्रन्थोंकी मांग होनेके फलस्वरूप वीरसेवामन्दिरने समाधितन्त्र और इष्टोपदेश' नामक ग्रन्थ पंडित परमानन्द शास्त्री कृत हिन्दीटीका और प्रभाचन्द्राचार्यकृत समाधितन्त्र टीका और आचार्यकल्प पंडित आशाधरजी कृत इष्टोपदेशकी संस्कृतटीका भी साथमें लगा दी है। स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये यह ग्रन्थ खास तौरसे उपयोगी है। पृष्ठ संख्या सब तीनसौ से ऊपर है। सजिल्द प्रतिका मूल्य ३) रुपया और विना जिल्दके २॥) रुपया है। वाइंडिग होकर ग्रन्थ एक महीनेमें प्रकाशित हो जायगा। ग्राहकों और पाठकोंको अभीसे अपना आर्डर भेज देना चाहिये।

मैनेजर—वीरसेवामन्दिर,

१ दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण

(श्री पं० परमानन्द जैन शास्त्री)

कारकलसे ३४ मील चलकर 'वरंगल' आए। यहाँ एक छोटीसी धर्मशाला एक कुवा और तालाबके अन्दर एक मदिर है दूरसे देखने पर पावापुरका दृश्य आँखोंके सामने आ जाता है। मंदिरमें जानेके लिये तालाबमें एक छोटीसी नौका रहती है जिसमें मुश्किलसे १०-१२ आदमी बैठ कर जाते हैं। हमलोग ४-५ बारमें गए और उतनी ही बारमें वापिस लौट कर आए। नौकाका चार्ज ३।।।) दिया। मंदिर विशाल है। ४-५ जगह दर्शन हैं। मूर्तियोंकी संख्या अधिक है और वे संभवतः दो सौके लगभग होंगी। मध्य मंदिरके चारों किनारों पर भी दश सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं। मन्दिरमें बैठ कर शांति का अनुभव होता है। इस मन्दिरका प्रबन्ध 'हुम्मच' के भट्टारके आधीन है। प्रबन्ध साधारण है। परन्तु तालाबमें सफाई कम थी—घास-फूस हो रहा था। बरसात कम होनेसे तालाबमें पानी भी कम था, तालाब में कमल भी लगे हुए हैं, जब वे प्रातःकाल खिलते हैं तब तालाबकी शोभा देखते ही बनती है। गर्मीके दिनोंमें तालाबका पानी भी गरम हो जाता है। परन्तु मन्दिरमें स्थित लोगोंको ठंडी वायुके झकोरे शान्ति प्रदान करते हैं। उक्त भट्टारकजीके पास वरंगक्षेत्र-सम्बन्धी एक 'स्थलपुराण' और उसका महात्म्य भी है ऐसा कहा जाता है। हुम्मच शिमोगा जिले में है। यहांके पद्मावती वस्तिके मंदिरमें एक बड़ा भारी शिलालेख अंकित है जो कनाड़ी और संस्कृत भाषामें उत्कीर्ण किया हुआ है। उसमें अनेक जैनाचार्योंका इतिवृत्त और नाम अंकित मिलते हैं जो अनुसन्धान प्रिय विद्वानोंके लिये बहुत उपयोगी हैं। यहाँ पुरानी भट्टारकीय गद्दी है जिस पर आज भी भट्टारक देवेन्दुकीर्ति मौजूद हैं। यहाँ एक शास्त्रभंडार भी है जिसमें संस्कृत प्राकृत और कनाड़ी भाषाके अनेक अप्रकाशित ग्रन्थ मौजूद हैं।

वरंगसे चलते समय काजू और सुपारी आदिके विशाल सुन्दर पेड़ दिखाई देते थे। दृश्य बड़ा ही मनोरम था। सड़कके दोनों ओरकी हरित वृक्षावली दर्शकके चित्तको आकृष्ट कर रही थी। हम लोग वरंग से १०-१२ मीलका ही रास्ता तय कर पाये थे कि पुलिस चौकीके समीप हमें रुकना पड़ा। और शिमोगा जानेके लिये हमें बतलाया गया कि इस रास्तेसे लारी नहीं जा सकती आपको कुछ घेरेसे जाना पड़ेगा। अतः हमें विवश हो कर सीधा मार्ग छोड़ कर मोड़से बांए हाथकी ओर वाली सड़कसे गुजरना पड़ा, क्योंकि सीधे रास्तेसे जाने पर नदीके पुल पर से कार ही जा सकती थी, लारी नहीं, उस मोड़से हम दो तीन मील ही चले थे कि एक ग्राम मिला, जिसका नाम मुझे इस समय स्मरण नहीं है, वहाँ हम लोगोंने शामका भोजन किया। उसके बाद उसी गांवकी नदीके मध्यमें से निकल कर पार वाली घाटीकी सड़कमें हमारा रास्ता मिल गया। यहाँ नदीका पुल नहीं है, नदीमें पानी अधिक नहीं था, सिर्फ घुटने तक ही था, हम लोगोंने लारीसे उतर कर नदीको पैरोंसे पार कर पुनः लारीमें बैठ गए। घाटीके रास्तेमें ६ मीलकी चढ़ाई है और इतनी ही उतराई है। सड़कके दोनों ओर सघन वृक्षोंकी ऊँची ऊँची विशाल पंक्तियाँ मनोहर जान पड़ती हैं। वृक्षोंकी सघन कतारों के कारण ऊँची नीची भूमि-विषयक विषम स्थान दुर्गम से दिखाई देते थे। चढ़ाई अधिक होनेके कारण मोटरका इञ्जन जब अधिक गर्म हो जाता था तब हम लोग उतर कर कुछ दूर पैदल ही चलते थे। परन्तु रात्रिको वह स्थान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था। कहा जाता है कि उस जंगलमें शेर व्याघ्र, चीता वगैरह हिंस्त्र-जन्तुओंका निवास है। पर हम लोग बिना किसी भयके १८ मील लम्बी उस घाटीको पार कर ३।। बजे रात्रिके करीब शिमोगा पहुंचे। और वहां दुकानोंकी पटड़ियों पर बिछौना बिछा कर थोड़ी नींद ली। और प्रातः काल नैमित्तिक कार्योंसे निवृत्त होकर तथा मंदिरमें दर्शन कर हरिहरके लिये चल दिये। और साड़े ग्यारह बजेके लगभग हम हरिहर पहुँचे। हरिहरमें हम सरकारी बंगलामें ठहरे और वहाँ भोजनादि बना खाकर दो बजेके करीब चलकर रातको ८।। बजेके लगभग हुगली पहुंचे और मोटरसे केवल बिस्तरादि उतार कर हम लोगोंने मंदिरमें दर्शन किये मंदिर अच्छा है उस में मूल नायककी मूर्ति बड़ी सुन्दर हैं। जैन मन्दिरकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मशालामें थोड़ेसे स्थानमें रात्रिको विश्राम करना पड़ा; क्योंकि धर्मशाला अन्य यात्रियोंसे भरी हुई थी, उनके शोरोगुलसे रात्रिमें नींद नहीं आई, फिर भी प्रातःकाल चार बजे उठ कर चल दिये, और रास्तेमें भोजनादि कार्योंसे उन्मुक्त हो कर २॥ बजेके करीब हम लोग बीजापुर पहुंचे।

बीजापुर—बम्बई अहातेके दक्षिणी विभागका एक प्राचीन प्रसिद्ध नगर था। इसे पूर्व समयमें 'बिजयपुर' के नामसे पुकारा जाता था ईसाकी द्वितीय शताब्दीमें इस नगर पर बादामीके राष्ट्रकूट राजाओंका सन् ७६० से ६७३ तक अधिकार रहा है। उनके बाद सन् ६७३ से ११६० तक कलचूरी राजाओंका और होसाल वंशके यशस्वी राजा बल्लालका अधिकार रहा है। जिनमें दक्षिणी बीजापुरमें सिंदा राजाओंने सन् ११२० से ११८० तक शासन किया है। इनमें अधिकांश राजा जैनधर्म प्रिय थे—उनकी जैन धर्मपर आस्था और प्रेम था, यही कारण है कि इनके समयमें इस प्रान्तमें सैकड़ों जैन मंदिर बने थे परंतु आज उन मंदिरोंके प्राचीन खंडहरात और अनेक मूर्तियाँ मूर्ति-लेखोंसे अंकित पाई जाती हैं। और सन् ११७० से १३वीं शताब्दीतक यादव वंशके राजाओंने मुसलमानोंके आक्रमणसे पूर्व तक राज्य किया है। मुसलमान बादशाहोंमें सबसे पहले अलाउद्दीन खिलजीने देवगिरि पर हमला किया था। और वहां से बहुमूल्य सम्पत्ति रत्न जवाहिरात और सोना वगैरह लूट कर लाया था इसने यादव वंशके नवमें राजा रामदेवको परास्त किया था। सन् १६८६ ई० में ओरंगजेबने बीजापुर पर कब्जा कर लिया। इसने इस प्रान्तके अनेक मन्दिरोंको धराशायी करवा दिया और मूर्तियोंको खंडित करवा दिया। बीजापुरके मुसलमानों के सातवें बादशाह मुहम्मद आदिल शाहने एक मकबरा बनवाया था जो 'गोल गुम्बज' के नामसे आज भी प्रसिद्ध है। इसमें आवाज लगानेसे जो प्रतिध्वनि निकलती है वह बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती है इसी कारण इसे 'बोली गुम्बज' भी कहा जाता है। मुसलमानोंके बाद बीजापुर पर महाराष्ट्रोंका अधिकार हो गया और उनके बाद अंग्रेजोंका शासन रहा है।

बीजापुरमें जैनियोंके पचीस तीस घर हैं जिनमें दशा हूमड़, पंचम कासार आदि जातियोंके लोग पाये जाते हैं। शहरमें दो दिगम्बर जैनमंदिर हैं जिनमें पार्श्वनाथकी मूलनायक प्रतिमा विराजमान हैं। हम लोगोंने उनकी सानन्द बन्दना की। बीजापुरसे दो मील दूरी पर जमीनमें गड़ा अति आचीनकालीन कलाकौशल सम्पन्न भगवान पार्श्वनाथका मंदिर मिला था। उसमें भगवान पार्श्व नाथकी लगभग एक हाथ ऊँची १०८ सर्प फणोंसे युक्त पद्मासन मूर्ति विराजमान है। उसके सिंहासन पर कनड़ी भाषामें एक शिलालेख उत्कीर्ण किया हुआ है; परन्तु उसके अक्षर अत्यन्त घिस जानेसे पढ़नेमें नहीं आते। बीजापुरके पंच ही उक्त मन्दिरकी पूजाका प्रबन्ध करते हैं।

मुसलमानोंके शासन कालमें दर्शनीय पुरातन जैन मन्दिरोंको ध्वंस करा दिया था और मूर्तियोंको अखण्डितदशामें चन्दा बावड़ीमें फिकवा दिया गया था। किलेमें जो जैन मूर्तियाँ मिली थीं उन्हें और बावड़ी वाली मूर्तियोंको अंग्रेजोंने बोली गुम्बज वाले पुरातन संग्राहलयमें रखवा दिया था। संग्राहलयकी मूर्तियोंमें से एक मूर्ति काले पाषाणकी है जो करीब तीन हाथ ऊँची होगी। इस मूर्तिके आसनमें जो लेख अंकित है वह संवत् १२३२ का है यह लेख मैंने उसी समय पूरा नोट कर लिया था; परन्तु वह यात्रामें इधर उधर हो गया, इसी कारण उसे यहाँ नहीं दिया जा सका।

बीजापुरमें मुसलमानोंकी दो मस्जिदें हैं, जो पुरानी मस्जिद और जुम्मा मस्जिदके नामसे पुकारी जाती हैं। कहा जाता है कि ये दोनों ही मस्जिदें हिन्दू और जैन मन्दिरोंको तोड़ कर उनके पत्थरों और स्तम्भोंसे बनाई गई हैं। पुरानी मस्जिदके मध्यकी लेन उत्तरी बगलके पास नक्कासीदार एक काले स्तम्भ पर कनाड़ी अक्षरोंमें संस्कृतका एक शिला लेख अंकित है इतना ही नहीं किन्तु चारों ओरके अन्य कई स्तम्भों पर भी संस्कृत और कनड़ीमें लेख उत्कीर्ण हैं उनमें एक लेख सन् १३२० ई० का बतलाया जाता है। इन सब उल्लेखोंसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उक्त शिलालेख वाले पुरातन जैन पाषाण स्तम्भ जैन मन्दिरोंके हैं। इस तरह जैनियोंके धार्मिक स्थानोंका मुसलमानोंने विध्वंस किया है। परन्तु जैनियोंने आज तक किसीके धार्मिक स्थानों.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को क्षति पहुंचानेका कोई उपक्रम नहीं किया।

बीजापुरसे चलकर हम लोग रास्तेमें एक बड़ी नदीको पार कर १ बजेके करीब शोलापुर पहुँचे और जैन श्राविकाश्रममें ठहरे।

प्रातःकालकी नैमित्तिक क्रियाओंसे फ़ारिग़ हो कर जिनमन्दिरमें दर्शन किये और श्रीमती सुमतिबाईने श्राविकाश्रममें एक सभाका आयोजन किया जिसमें मुख्तार सा० ला० राजकृष्णजी बाबूलाल जमादार, मेरा, विद्युल्लता और सुमतिबाईजीके संक्षिप्त भाषण हुए। श्राविकाश्रमका कार्य अच्छा चल रहा है। श्री सुमतिबाई जी अपना अधिकांश समय संस्था-संचालनमें तथा कुछ समय ज्ञान-गोष्ठीमें भी बिताती हैं। सोलापुरमें कई जैनसंस्थाएँ हैं। जैन समाजका पुरातन पत्र 'जैन बोधक' यहाँ से ही प्रकाशित होता है, श्रीकुन्थुसागर ग्रंथमालाके प्रकाशन भी यहाँ से ही होते हैं और जीवराज ग्रन्थमालाका आफिस और सेठ माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय बम्बईका दफ्तर भी यहाँ ही है। सोलापुर व्यापारका केन्द्रस्थल है। सोलापुरसे ता० १२ के दुपहर बाद चल कर हम लोग वार्सी आए। और वहां सेठजीके एक क्वाटरमें ठहरे जो एक मिलके मालिक हैं और जिनके अनुरोधसे आचार्य शांतिसागरजी उन्हींके बगीचेमें ठहरे हुए थे। हम लोगोंने रात्रिमें विश्राम कर प्रातःकाल आवश्यक क्रियाओंसे निमिट कर आचार्यश्रीके दर्शन करने गये। प्रथम जिनदर्शन कर आचार्य महाराजके दर्शन किये, जहाँ पं० तनसुखरायजी कालाने लाला राजकृष्णजी और मुख्तार साहब आदिका परिचय कुछ भ्रान्त एवं आक्षेपात्मकरूपमें उपस्थित किया जिसका तत्काल परिहार किया गया और जनता ने तथा आचार्य महाराजने पंडितजीकी उस अनर्गल प्रवृत्तिको रोका। उसके बाद आचार्य महाराजका उपदेश प्रारम्भ हुआ। आपने श्रावक व्रतोंका कथन करते हुए कहा कि जिन भगवानने श्रावकोंको जिन पूजादिका उपदेश दिया। तब मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीने आचार्यश्रीसे पूछा कि महाराज आचार्य पात्रकेशरीने, जो अकलंकदेवसे पूर्ववर्ती हैं, उन्होंने अपने 'जिनेन्द्रस्तुति' नामके ग्रन्थमें यह स्पष्ट बतलाया है कि ज्वलित (देदीप्यमान) केवल ज्ञानके धारक जिनेन्द्रभगवानने मुक्ति-सुखके लिये चैत्यनिर्माण करना, दान देना और पूजनादिक क्रियाओंका उपदेश नहीं दिया; क्योंकि ये सब क्रियाएँ प्राणियोंके मरण और पीड़नादिककी कारण हैं; किन्तु आपके गुणोंमें अनुराग करने वाले श्रावकोंने स्वयं ही उनका अनुष्ठान कर लिया है जैसा कि उनके निम्न पद्यसे स्पष्ट है :—

"विमोक्षसुखचैत्यदानपरिपूजनाद्यात्मिकाः,
क्रिया बहुविधासुभ्रन्मरणपीड़नादिहेतवः।"
त्वया ज्वलितकेवलेन नहि देशितः किंतु ता—
स्त्वयि प्रसृतभक्तिभिः स्वयमनुष्ठिताः श्रावकैः ॥३७॥

इस पद्यको सुनकर आचार्यश्रीने कहा कि आदिपुराणमें जिनसेनाचार्योंने जिनपूजाका सम्मुल्लेख किया है। तब मुख्तार साहबने कहा कि भगवान आदिनाथने गृहस्थ अवस्थामें भले ही जिनपूजाका उपदेश दिया हो; किन्तु केवलज्ञान प्राप्त करनेके बाद उपदेश दिया हो, ऐसा कोई उल्लेख अभी तक किसी ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया। इसके बाद आचार्यश्रीसे कुछ समय एकान्तमें तत्त्व चर्चाके लिए समय प्रदान करनेकी प्रार्थन की गई, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। अनन्तर आचार्यश्री चर्याके लिए चले गए। और हम लोग उनके आहारके बाद डेरे पर आये, तथा भोजनादिसे निवृत्त होकर और सामानको लारीमें व्यवस्थित कर आचार्यश्रीके पास मुख्तार सा०, लाला राजकृष्णजी और सेठ छदामीलालजी बाबूलाल जमादार और मैं गए। और करीब डेढ़ घण्टे तक विविध विषयों पर बड़ी शांतिसे चर्चा होती रही। पश्चात् हम लोग ४ बजेके लगभग वार्सीटाउनसे रवाना होकर सिद्ध क्षेत्र कुंथलगिरी आये। कुंथलगिरिमें देखा तो धर्मशाला यात्रियोंसे परिपूर्ण थी। फिर भी जैसे तैसे थोड़ी नींद ले कर रात्रि व्यतीत की, रात्रिमें और भी यात्री आये। और प्रातःकाल नैमित्तिक क्रियाओंसे निमिट कर वन्दना की। निर्वाणकाण्डके अनुसार कुंथलगिरिसे कुलभूषण और देशभूषण मुनि मुक्ति गये थे जैसा कि निर्वाणकाण्डकी निम्न गाथासे प्रकट है :—

वंसस्थलवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरीसिहरे
कुलदेसभूषणमुणी, णिव्वाणगया णमो तेसिं॥

यहाँ पर १० १२ मन्दिर हैं। पर वे प्रायः सब ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक हैं प्राचीन मंदिर जीर्णशीर्ण हो गया था जिसका जीर्णोद्धर संवत् १९३२ में भट्टारक कनककीर्ति ईडरवालोंकी ओरसे किया गया था। यहाँ एक ब्रह्मचर्याश्रम भी है जिसमें उस प्रान्तके अनेक विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। यह क्षेत्र कितना पुराना है इसका कोई इतिवृत्त मुझे जल्दीमें प्राप्त नहीं हो सका। हम लोगोंने सानन्द यात्रा की। और भोजनादिके पश्चात् यहांसे औरंगाबादके लिये रवाना हुए। (क्रमशः)

जैनधर्म और जैनदर्शन

(लेखक : श्री अम्बुजाक्ष एम. ए. बी. एल.)

पुण्यभूमि भारतवर्षमें वैदक (हिन्दू) बौद्ध और जैन इन तीन प्रधान धर्मोंका अभ्युत्थान हुआ है। यद्यपि बौद्धधर्म भारतके अनेक सम्प्रदायों और अनेक प्रकारके आचारों व्यवहारोंमें अपना प्रभाव छोड़ गया है, परन्तु वह अपनी जन्मभूमिसे खदेड़ दिया गया है और सिंहल, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन आदि देशोंमें वर्तमान है। इस समय हमारे देशमें बौद्धधर्मके सम्बन्धमें यथेष्ट आलोचना होती है, परन्तु जैनधर्मके विषयमें अब तक कोई भी उल्लेख योग्य आलोचना नहीं हुई। जैनधर्मके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान बहुतही परिमित है। स्कूलोंमें पढ़ाये जाने वाले इतिहासोंके एक दो पृष्ठोंमें तीर्थंकर महावीर द्वारा प्रचारित जैनधर्मके सम्बन्धमें जो अत्यन्त संक्षिप्त विवरण रहता है, उसको छोड़ कर हम कुछ भी नहीं जानते। जैनधर्म-सम्बन्धी विस्तृत आलोचना करनेकी लोगोंकी इच्छा भी होती है, पर अभी तक उसके पूर्ण होनेका कोई विशेष सुभीता नहीं है। कारण दो चार ग्रन्थोंको छोड़ कर जैनधर्म सम्बन्धी अगणित ग्रन्थ अभी तक भी अप्रकाशित हैं; भिन्न-भिन्न मन्दिरोंके भण्डारोंमें जैन ग्रन्थ छुपे हुए हैं, इसलिए पठन या आलोचना करनेके लिए ये दुर्लभ हैं।

हमारी उपेक्षा तथा अज्ञता

बौद्धधर्मके समान जैनधर्मकी आलोचना क्यों नहीं हुई? इसके और भी कई कारण हैं। बौद्धधर्म पृथ्वीके एक तृतीयांश प्राणियोंका धर्म है, किन्तु भारतके चालीस करोड़ लोगोंमें जैनधर्मावलम्बी केवल लगभग बीस लाख हैं। इसी कारण बौद्धधर्मके समान जैनधर्मके गुरुत्वका किसी को अनुभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त भारतमें बौद्ध प्रभाव विशेषताके साथ परिस्फुटित है। इसलिए भारतके इतिहासकी आलोचनामें बौद्धधर्मका प्रसंग स्वयं ही आकर उपस्थित हो जाता है। अशोकस्तम्भ, चीनी यात्री ह्वेनसांग का भारत भ्रमण, आदि जो प्राचीन इतिहासकी निर्विवाद बातें हैं उनका बहुत बड़ा भाग बौद्धधर्मके साथ मिला हुआ है भारतके कीर्तिशाली चक्रवर्ती राजाओंने बौद्धधर्मको राजधर्मके रूपमें ग्रहण किया था, इसलिए किसी समय हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तककी समस्त भारत भूमि पीले कपड़े वालोंसे व्याप्त हो गयी थी। किन्तु भारतीय इतिहासमें जैनधर्मका प्रभाव कहाँ तक विस्तृत हुआ था यह अब तक भी पूर्ण रूपसे मालूम नहीं होता है। भारतके विविध स्थानोंमें जैनकीर्तिके जो अनेक ध्वंसावशेष अब भी वर्तमान है। उनके सम्बन्धमें अच्छी तरह अनुसन्धान करके ऐतिहासिक तत्त्वोंको खोजनेकी कोई उल्लेख योग्य चेष्टा नहीं हुई है। मैसूर राज्यके श्रवणबेलगोल नामके स्थानके चन्द्रगिरि पर्वत पर जो थोड़ेसे शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे मालूम होता है कि मौर्यवंशके प्रतिष्ठाता महाराज चन्द्रगुप्त जैनमतावलम्बी थे। इस बातको श्री विन्सेंट स्मिथने अपने भारतके इतिहासके तृतीय संस्करण (१९१४) में लिखा है परन्तु इस विषयमें कुछ लोगोंने शंका की है किन्तु अब अधिकांश मान्य विद्वान इस विषयमें एक मत हो गये हैं। जैन शास्त्रोंमें लिखा है कि महाराज चन्द्रगुप्त (छट्ठे ?) पाँचवे श्रुतकेवली भद्रबाहुके द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित किये गये थे और महाराज अशोक भी पहले अपने पितामहसे ग्रहीत जैनधर्मके अनुयायी थे; पर पीछे उन्होंने जैनधर्मका परित्याग करके बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। भारतीय विचारों पर जैनधर्म और जैनदर्शनने क्या प्रभाव डाला है, इसका इतिहास लिखनेके समग्र उपकरण अब भी संग्रह नहीं किए गए हैं। पर यह बात अच्छी तरह निश्चित हो चुकी है कि जैन विद्वानोंने न्यायशास्त्रमें बहुत अधिक उन्नति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की थी। उनके और बौद्धनैयायकोंके संसर्ग और संघर्षके कारण प्राचीन न्यायका कितना ही अंश परिवर्द्धित और परिवर्तित किया गया और नवीन न्यायके रचनेकी आवश्यकता हुई थी। शाकटायन आदि वैयाकरण, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र-स्वामी, उमास्वामी, सिद्धसेन दिवाकर, भट्टाकलङ्कदेव, आदि नैयायिक, टीकाकृत कुलरवि मल्लिनाथ, कोषकार अमरसिंह, अभिधानकार पूज्यपाद, हेमचन्द्र तथा गणितज्ञ महावीराचार्य, आदि विद्वान् जैन धर्मावलम्बी थे। भारतीय ज्ञान भण्डार इन सबका बहुत ऋणी है।

अच्छी तरह परिचय तथा आलोचना न होनेके कारण अब भी जैनधर्मके विषयमें लोगोंके तरह तरह के ऊटपटांग ख्याल बने हैं। कोई कहता था यह बौद्धधर्मका ही एक भेद है। कोई कहता था वैदिक (हिन्दू) धर्म में जो अनेक सम्प्रदाय हैं, इन्हींमेंसे यह भी एक है जिसे महावीर स्वामी-ने प्रवर्तित किया था। कोई कोई कहते थे कि जैन आर्य नहीं हैं, क्योंकि वे नग्न मूर्तियोंको पूजते हैं। जैनधर्म भारतके मूलनिवासियोंके किसी एक धर्म सम्प्रदायका केवल एक रूपान्तर है। इस तरह नाना अनभिज्ञताओंके कारण नाना प्रकारकी कल्पनाओंसे प्रसूत भ्रांतियाँ फैल रही थीं, उनकी निराधारता अब धीरे-धीरे प्रकट होती जाती है।

जैनधर्म बौद्धधर्मसे अति प्राचीन

यह अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा नहीं है महावीर स्वामी जैनधर्मके संस्थापक नहीं हैं, उन्होंने केवल प्राचीन धर्मका प्रचार किया था। महावीर या वर्द्धमान स्वामी बुद्धदेवके समकालीन थे। बुद्धदेवने बुद्धत्व प्राप्त करके धर्मप्रचार कार्यका व्रत लेकर जिस समय धर्मचक्रका प्रवर्तन किया था, उस समय महा-वीर स्वामी एक सर्व विश्रुत तथा मान्यधर्म शिक्षक थे। बौद्धोंके त्रिपिटिक नामक ग्रन्थमें 'नातपुत्त' नामक जिस निर्ग्रन्थ धर्मप्रचारकका उल्लेख है, वह 'नातपुत्त' ही महावीर स्वामी हैं उन्होंने ज्ञातृनामक क्षत्रियवंशमें जन्मग्रहण किया था, इसलिए वे ज्ञातपुत्र१ (पाली भाषामें जा [ना] त पुत्र) कहलाते थे। जैन मतानुसार महावीरस्वामी चौबीसवें या अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके लगभग २०० वर्ष पहले तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथस्वामी हो चुके थे। अब तक इस विषयमें सन्देह था कि पार्श्वनार्थ स्वामी ऐतिहासिक व्यक्ति थे या नहीं; परन्तु डा० हर्मन जैकोबीने सिद्ध किया है कि पार्श्वनाथने ईसासे पूर्व आठवीं शताब्दीमें जैनधर्मका प्रचार किया था। पार्श्वनाथके पूर्ववर्ती अन्य बाईस तीर्थंकरों-के सम्बन्धमें अब तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है।

दिगम्बर मूल परम्परा है

'तीर्थक', निर्गन्थ, और नग्न नाम भी जैनोंके लिये व्यवहृत होते हैं। यह तीसरा नाम जैनोंके प्रधान और प्राचीनतम दिगम्बर सम्प्रदायके कारण पड़ा है। मेगस्थनीज इन्हें नग्न दार्शनिक (Gymnosphists) के नामसे उल्लेख करता है। ग्रीस देशमें एक ईलियाटिक नामका सम्प्रदाय हुआ है। वह नित्य, परिवर्तन रहित एक अद्वैत सत्तामात्र स्वीकार करके जगतके सारे परिवर्तनों, गतियों और क्रियाओंकी संभावनाको अस्वीकार करता है। इस मतका प्रतिद्वन्द्वी एक 'हिराक्लीटियन' सम्प्रदाय हुआ है वह विश्वतत्त्वकी (द्रव्य) की नित्यता सम्पूर्ण रूपसे अस्वीकार करता है। उसके मतसे जगत सर्वथा परिवर्तनशील है। जगत-स्रोत निरबाध गतिसे वह रहा है, एक क्षण भरके लिए भी कोई वस्तु एक भावसे स्थित होकर नहीं रह सकती। ईलियाटिक-सम्प्रदायके द्वारा प्रचारित उक्त नित्य-वाद और हीराक्लीटियन सम्प्रदाय द्वारा प्रचारित परिवर्तन-वाद पाश्चात्य दर्शनोंमें समय समय पर अनेक रूपोंमें नाना समस्याओंके आवरणमें प्रकट हुए हैं। इन दो मतोंके सम-न्वयकी अनेक बार चेष्टा भी हुई है; परन्तु वह सफल कभी नहीं हुई। वर्त्तमान समयके प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक बर्ग-सान (Bergson) का दर्शन हिराक्लीटियनक मतका ही रूपान्तर है।

भारतीय नित्य-अनित्यवाद

वेदान्तदर्शनमें भी सदासे यह दार्शनिक विवाद प्रकाश-मान हो रहा है। वेदान्तके मतसे केवल नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य स्वभाव चैतन्य ही 'सत्' है, शेष जो कुछ है वह केवल नाम रूपका विकार 'माया प्रपंच'—'असत्' है। शङ्कराचार्यने सत् शब्दकी जो व्याख्या की है उसके अनुसार इस दिखलाई देने वाले जगत प्रपंचकी कोई भी वस्तु सत् नहीं हो सकती। भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें जिस वस्तुके

१ दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें महावीर स्वामीके वंशका उल्लेख 'नाथ' नामसे मिलता है, जो निश्चय ही ही 'ज्ञातृ' के प्राकृत रूप 'णात' का ही रूपान्तर है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धमें बुद्धिकी भ्रांति नहीं होती, वह सत् है और जिसके सम्बन्धमें व्यभिचार होता है—वह असत् है१। जो वर्त्तमान समयमें है, वह यदि अनादि अतीतके किसी समयमें नहीं था और अनन्त भविष्यत्के भी किसी समयमें नहीं रहेगा, तो सत् नहीं हो सकता—वह असत् है। परिवर्तनशील असद्वस्तुके साथ वेदान्तका कोई सम्पर्क नहीं है! वेदांत-दर्शन केवल अद्वैत सद्ब्रह्मतत्व दृष्टिसे अनुसंधान करता है। वेदान्तकी यही प्रथम बात है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' और यही अन्तिम बात है। क्योंकि—'तस्मिन् विज्ञाते सर्व-मिदं विज्ञातं भवति'।

वेदान्तके समान बौद्धदर्शनमें कोई त्रिकाल अव्यभि-चारी नित्य वस्तु नहीं मानी गयी है बौद्ध क्षणिकवादके मतसे 'सर्वः क्षणं क्षणं'। जगत् स्रोत अप्रतिहततया अबाध गतिसे बराबर वह रहा है—क्षणभरके लिए भी कोई वस्तु एक ही भावसे एक ही अवस्थामें स्थिर होकर नहीं रह सकती। परिवर्तन ही जगतका मूलमन्त्र है! जो इस क्षणमें मौजूद है, वह आगामी क्षणमें ही नष्ट होकर दूसरा रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार अनन्त मरण और अनन्त क्रीड़ायें इस विश्वके रंगमंच पर लगातार हुआ करती हैं। यहाँ स्थिति, स्थैर्य, नित्यता असम्भव है।

जैन अनेकान्त

'स्याद्वादी जैनदर्शन वेदान्त और बौद्धमतकी आंशिक सत्यताको स्वीकार करके कहता है कि विश्वतत्व या द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी। वह उत्पत्ति, ध्रुवता और विनाश इन तीन प्रकारकी परस्पर विरुद्ध अवस्थाओंमेंसे युक्त है। वेदान्तदर्शनमें जिस प्रकार 'स्वरूप' और 'तटस्थ' लक्षण कहे गये हैं उसी प्रकार जैनदर्शनमें प्रत्येक वस्तुको समझाने-के लिये दो तरहसे निर्देश करनेकी व्यवस्था है। एकको कहते हैं 'निश्चयनय' और दूसरेको कहते हैं 'व्यवहारनय'। स्वरूप लक्षणका जो अर्थ है, ठीक वही अर्थ निश्चयनयका है। वह वस्तुके निजभाव या स्वरूपको बतलाता है। व्यव-हारनय वेदांतके तटस्थ लक्षणके अनुरूप है। उससे वक्ष्य-माण वस्तु किसी दूसरी—वस्तुकी अपेक्षासे वर्णित होती है। द्रव्य निश्चयनयसे ध्रुव है किन्तु व्यवहारनयसे उत्पत्ति और विनाशशील है, अर्थात् द्रव्यके स्वरूप या स्वभावकी अपेक्षासे देखा जाय तो वह नित्यस्थायी पदार्थ है, किन्तु साक्षात् परिदृश्यमान व्यवहारिक जगतकी अपेक्षासे देखा जाय तो वह अनित्य और परिवर्तनशील है। द्रव्यके सम्बन्धमें नित्यता और परिवर्तन आंशिक या अपेक्षिक भावसे सत्य है—पर सर्वथा एकांतिक सत्य नहीं है। वेदान्तने द्रव्यकी नित्यता के ऊपर ही दृष्टि रखी है और भीतरकी वस्तुका सन्धान पाकर, बाहरके परिवर्तनमय जगत-प्रपञ्चको तुच्छ कह कर उड़ा दिया है; और बौद्ध क्षणिकवादने बाहरके परिवर्तनकी प्रचुरताके प्रभावसे रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शादिकी विचित्रतामें ही मुग्ध होकर इस बहिर्वैचित्र्यके कारणभूत, नित्य-सूत्र अभ्यंतरको खो दिया है। पर स्याद्वादी जैनदर्शनने भीतर और बाहर, आधार आधेय, धर्म और धर्मी, कारण और कार्य, अद्वैत और वैविध्य दोनोंको ही यथास्थान स्वीकार कर किया है।

स्याद्वादकी व्यापकता

'इस तरह स्याद्वादने, विरुद्ध वादोंकी मीमांसा करके उनके अन्तःसूत्र रूप आपेक्षिक सत्यका प्रतिपादन करके उसे पूर्णता प्रदान की है। विलियम जेम्स नामके विद्वान-द्वारा प्रचारित—Pragmtaism वादके साथ स्याद्वादकी अनेक अंशोंमें तुलना हो सकती है। स्याद्वादका मूलसूत्र जुदे-जुदे दर्शन शास्त्रोंमें जुदे-जुदे रूपमें स्वीकृत हुआ है। यहाँ तक कि शंकराचार्यने पारमार्थिक-सत्यसे व्यवहारिक सत्यको जिस कारण विशेष रूपमें माना है, वह इस स्याद्वादके मूलसूत्रके साथ अभिन्न है। श्रीशंकराचार्यने परिदृश्यमान या दिख-लायी देने वाले जगतका अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया है। बौद्ध विज्ञानवाद एवं शून्यवादके विरुद्ध उन्होंने जगतकी व्यवहारिक सत्ताको अत्यन्त दृढ़ताके साथ प्रमाणित किया है। समतल भूमि पर चलते समय एक तत्त्व, द्वितत्त्व, त्रितत्त्व, आदि उच्चताके नानाप्रकारके भेद हमें दिखलायी देते हैं, किन्तु बहुत ऊँचे शिखरसे नीचे देखने पर सत खण्डा महल और कुटियामें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पड़ता। इसी तरह ब्रह्मबुद्धिसे देखने पर जगतमायाका विकास, ऐन्द्रजालिक रचना अर्थात् अनित्य है; किन्तु साधारण बुद्धिसे देखने पर जगतकी सत्ता स्वीकार करना ही पड़ती है। दो प्रकारका सत्य दो विभिन्न दृष्टियोंके कारणसे स्वयं सिद्ध हैं। वेदांतसारमें मायाको जो प्रसिद्ध 'संज्ञा' दी गई है, उससे भी इस प्रकार-की भिन्न दृष्टियोंसे समुत्पन्न सत्यताके भिन्न रूपोंकी स्वीकृति

१ 'यद्विषया बुद्धिर्नव्यभिचरति तत्सत्,
यद्विषिया बुद्धिर्व्यभिचरति तदसत्'।
गीता शंकरभाष्य २—१६।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इष्ट है। बौद्ध दृश्यवादमें शून्यका जो व्यतिरेकमुख लक्षण किया है, उसमें भी स्याद्वादकी छाया स्पष्ट प्रतीत होती है। अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति दोनों, अस्ति नास्ति दोनों नहीं, इन चार प्रकारकी भावनाओंके जो परे हैं, उसे शून्यत्व कहते हैं १। इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी दर्शनोंके जुदे-जुदे स्थानोंमें स्याद्वादका मूलसूत्र तत्वज्ञानके कारण रूपसे स्वीकृत होने पर भी, स्याद्वादको स्वतन्त्र उच्च दार्शनिक मतके रूपमें प्रसिद्ध करनेका गौरव केवल जैनदर्शनको ही मिल सकता है।

जैनसृष्टिक्रम—

जैनदर्शनके मूलतत्त्व या द्रव्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है उससे ही मालूम हो जाता है कि जैनदर्शन यह स्वीकार नहीं करता कि सृष्टि किसी विशेष समयमें उत्पन्न हुई है। एक ऐसा समय था जब सृष्टि नहीं थी, सर्वत्र शून्यता थी, उस महाशून्यके भीतर केवल सृष्टिकर्ता अकेला विराजमान था और उसी शून्यसे किसी एक समयमें उसने उस ब्रह्माण्डको बनाया। इस प्रकारका मत दार्शनिक दृष्टिसे अतिशय भ्रमपूर्ण है। शून्यसे (असत्से) सत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सत्यार्थवादियोंके मतसे केवल सत्से ही सत्की उत्पत्ति होना सम्भव है २। सत्कार्यवादका यह मूलसूत्र संक्षेपमें भगवत् गीतामें मौजूद है। सांख्य और वेदांतके समान जैनदर्शन भी सत्कार्यवादी हैं।

'जैनदर्शनमें 'जीव' तत्त्वकी जैसी विस्तृत आलोचना है वैसी और किसी दर्शनमें न

'वेदांतदर्शनमें संचित, क्रियामाण और प्रारब्ध इन तीन प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। जैनदर्शनमें इन्हींको यथाक्रम सत्ता, बन्ध और उदय कहा है। दोनों दर्शनोंमें इनका स्वरूप भी एकसा है।'

'सयोगकेवली और अयोगकेवली अवस्थाके साथ हमारे शास्त्रोंकी जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी तुलना हो सकती है। जुदे जुदे गुणस्थानोंके समान मोक्षप्राप्तिकी जुदी जुदी अवस्थाएँ वैदिक-दर्शनोंमें मानी गयी हैं। योगवाशिष्टमें शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, संसक्ति, पदार्थाभाविनी और तूर्यगाः इन सात ब्रह्मविद्, भूमियोंका वर्णन किया गया है।

'संवरतत्त्व और 'प्रतिमा' पालन जैनदर्शनका चारित्रमार्ग है। इससे एक ऊँचे स्तरका नैतिक आदर्श प्रतिष्ठापित किया गया है। सब प्रकारसे असक्ति रहित होकर कर्म करना ही साधनाकी भित्ति है आसक्तिके कारण ही कर्मबन्ध होता है; अनासक्त होकर कर्मकरनेसे उसके द्वारा कर्मबन्ध नहीं होगा। भगवद्गीतामें निष्काम कर्मका जो अनुपम उपदेश किया है, जैनशास्त्रोंके चरित्र विषयक ग्रन्थोंमें वह छाया विशदरूपमें दिखलाई देती है।

'जैनधर्मने अहिंसा तत्वको अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक करके व्यवहारिक जीवनको पग, पग पर नियमित और वैधानिक करके एक उपहासास्पद सीमा पार पहुंचा दिया है, ऐसा कतिपय लोगोंका कथन है। इस सम्बंधमें जितने विधिनिषेध हैं उन सबको पालते हुए चलना इस बीसवीं शतीके जटिल जीवनमें उपयोगी, सहज और संभव है या नहीं यह विचारणीय है।

जैनधर्ममें अहिंसाको इतनी प्रधानता क्यों दी गयी है? यह ऐतिहासिकोंकी गवेषणाके योग्य विषय है। जैनसिद्धांतमें अहिंसा शब्दका अर्थ व्यापकसे व्यापकतर हुआ है। तथा अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थोंमें वह रूपांतर भावसे ग्रहण किया गया गीताके निष्काम-कर्म-उपदेशसा प्रतीत होता है तो भी, पहले अहिंसा शब्द साधारण प्रचलित अर्थमें ही व्यवहृत होता था, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है। वैदिकयुगमें यज्ञ-क्रियामें पशुहिंसा अत्यंत निष्ठुर सीमा पर जा पहुँची थी। इस क्रूरकर्मके विरुद्ध उस समय कितने ही अहिंसावादी सम्प्रदायोंका उदय हुआ था, यह बात एक प्रकारसे सुनिश्चित है। वेदमें 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि' यह साधारण उपदेश रहने पर भी यज्ञकर्ममें पशु हत्याकी अनेक विशेष विधियोंका उपदेश होनेके कारण यह साधारणविधि (व्यवस्था) केवल विधिके रूपमें ही सीमित हो गयी थी, पद पदपर उपेक्षित तथा उल्लंघित होनेसे उसमें निहित कल्याणकारी उपदेश सदाके लिये विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया था और अंतमें 'पशुयज्ञके लिये ही बनाये गये हैं' यह अद्भुत मत प्रचलित हो गया था※। इसके फलस्वरूप वैदिक कर्मकाण्डः बलिमें मारे गये पशुओंके रक्तसे लाल होकर समस्त सात्विक भावका विरोधी हो गया था। जैन

(१) "सदसदुभयानुभय-चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यत्वम्"—

(२) "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"—

※ "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा।
अतस्त्वां घातयिस्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं कि उस समय यज्ञकी इस नृशंस पशु हत्याके विरुद्ध जिस-जिस मतने विरोधका बीड़ा उठाया था उनमें जैनधर्म सबसे आगे था 'मुनयो वातवसनाः' कहकर ऋग्वेदमें जिन नग्न मुनियोंका उल्लेख है, विद्वानोंका कथन है कि वे जैन दिगम्बर सन्यासी ही हैं।

बुद्धदेवको लक्ष्य करके जयदेवने कहा है—

"निन्दसि यज्ञाविधेरहह श्रुतिज्ञातं
सदय हृदय दिशति पशुघातम् ?"

किन्तु यह अहिंसातत्त्व जैनधर्ममें इस प्रकार अंग-अंगी-भावसे संमिश्रित है कि जैनधर्मकी सत्ता बौद्धधर्मके बहुत पहलेसे सिद्ध होनेके कारण पशुघातात्मक यज्ञ विधिके विरुद्ध पहले पहले खड़े होनेका श्रेय बुद्धदेवकी अपेक्षा जैनधर्मको ही अधिक है। वेदविधिकी निंदा करनेके कारण हमारे शास्त्रोंमें चार्वाक, जैन और बौद्ध पाषण्ड 'या अनास्तिक' मतके नामसे विख्यात हैं। इन तीनों सम्प्रदायोंकी झूठी निंदा करके जिन शास्त्रकारोंने अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णताका परिचय दिया है, उनके इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होगा कि जो ग्रन्थ जितना ही प्राचीन है, उसमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनोंको उतनी ही अधिक गाली गलौज की है। अहिंसावादी जैनोंके शांत निरीह शिर पर किसी किसी शास्त्रकारने तो श्लोक पर श्लोक ग्रन्थित करके गालियोंकी मूसलाधार वर्षा की है। उदाहरणके तौर पर विष्णुपुराणको ले लीजिये अभीतककी खोजोंके अनुसार विष्णुपुराण सारे पुराणोंसे प्राचीनतम न होने पर भी अत्यन्त प्राचीन है। इसके तृतीय भागके सत्तरहवें और अठारवें अध्याय केवल जैनोंकी निंदासे पूर्ण है। 'नग्नदर्शनसे श्राद्धकार्य भ्रष्ट हो जाता है और नग्नके साथ संभाषण करनेसे उस दिनका पुण्य नष्ट हो जाता है। शतधनुनामक राजाने एक नग्न पाषण्डसे संभाषण किया था, इस कारण वह कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, गीध और मोरकी योनियोंमें जन्म धारण करके अंतमें अश्वमेधयज्ञके जलसे स्नान करने पर मुक्तिलाभ कर सका।' जैनोंके प्रति वैदिकोंके प्रबल विद्वेषकी निम्नलिखित श्लोकोंसे अभिव्यक्ति होती है—

'न पठेत् यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम्॥

यद्यपि जैन लोग अनंत मुक्तात्माओं (सिद्धों)की उपासना करते हैं तो भी वास्तवमें वे व्यक्तित्वरहित पारमात्म्य स्वरूपकी ही पूजा करते हैं। व्यक्तित्व रहित होनेके कारण ही जैनपूजा-पद्धतिमें वैष्णव और शाक्तमतोंके समान भक्तिकी विचित्र तरङ्गोंकी सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है।

बहुत लोग यह भूल कर रहे थे कि बौद्धमत और जैनमतमें भिन्नता नहीं है पर दोनों धर्मोंमें कुछ अंशोंमें समानता होने पर भी असमानताकी कमी नहीं है। समानतामें पहली बात तो यह है कि दोनोंमें अहिंसाधर्मकी अत्यन्त प्रधानता है। दूसरे जिन, सुगत, अर्हत्, सर्वज्ञ तथागत, बुद्ध आदि नाम बौद्ध और जैन दोनों ही अपने अपने उपास्य देवोंके लिये प्रयुक्त करते हैं। तीसरे दोनों ही धर्मवाले बुद्धदेव या तीर्थंकरोंकी एक ही प्रकारकी पाषाण प्रतिमाएँ बनवाकर चैत्यों या स्तूपोंमें स्थापित करते हैं और उनकी पूजा करते हैं। स्तूपों और मूर्तियोंमें इतनी अधिक सदृशता है कि कभी कभी किसी मूर्ति और स्तूपका यह निर्णय करना कि यह जैनमूर्ति है या बौद्ध, विशेषज्ञोंके लिये कठिन हो जाता है। इन सब बाहरी समानताओंके अतिरिक्त दोनों धर्मोंकी विशेष मान्यताओंमें भी कहीं कहीं सदृशता दिखती है, परन्तु उन सब विषयोंमें वैदिकधर्मके साथ जैन और बौद्ध दोनोंका ही प्रायः एक मत्य है। इस प्रकार बहुत सी समानताएँ होने पर भी दोनोंमें बहुत कुछ विरोध है। पहला विरोध तो यह है कि बौद्ध क्षणिकवादी हैं; पर जैन क्षणिकवादको एकांतरूपमें स्वीकार नहीं करता। जैनधर्म कहता है कि कर्म फलरूपसे प्रवर्तमान जन्मांतरवादके साथ क्षणिकवादका कोई सामंजस्य नहीं हो सकता। क्षणिकवाद माननेसे कर्मफल मानना असम्भव है। जैनधर्ममें अहिंसा नीतिको जितनी सूक्ष्मतासे लिया है उतनी बौद्धोंमें नहीं है। अन्य द्वारा मारे हुए जीवका मांस खानेको बौद्धधर्म मना नहीं करता, उसमें स्वयं हत्याकरना ही मना है। बौद्धदर्शनके पंचस्कन्धोंके समान कोई मनोवैज्ञानिक तत्त्वभी जैनदर्शनमें माना नहीं गया।

बौद्ध दर्शनमें जीवपर्याय अपेक्षाकृत सीमित है, जैनदर्शनके समान उदार और व्यापक नहीं है। वैदिकधर्मों तथा जैनधर्ममें मुक्तिके मार्गमें जिस प्रकार उत्तरोत्तर सीढियोंकी बात है, वैसी बौद्धधर्ममें नहीं है। जैनगोत्र-वर्णके रूपमें जातिविचार मानते हैं, पर बौद्ध नहीं मानते।

'जैन और बौद्धोंको एक समझनेका कारण जैनमतका भलीभांति मनन न करनेके सिवाय और कुछ नहीं है। प्राचीन भारतीय शास्त्रोंमें कहीं भी दोनोंको एक समझनेकी भूल नहीं की गई है। वेदांतसूत्र में जुदे जुदे स्थानों पर जुदे जुदे हेतुवादसे बौद्ध और जैनमतका खण्डन किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंकर दिग्वजयमें लिखा है कि शंकराचार्यने काशीमें बौद्धोंके साथ और उज्जयनीमें जैनोंके साथ शास्त्रार्थ किया था। यदि दोनों मत एक होते, तो उनके साथ दो जुदे जुदे स्थानोंमें दो बार शास्त्रार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं थी। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें बौद्धभिक्षु और जैनदिगम्बरकी लड़ायीका वर्णन है।

वैदिक (हिन्दू) के साथ जैनधर्मका अनेक स्थानोंमें विरोध है; परन्तु विरोधकी अपेक्षा सादृश्यही अधिक है। इतने दिनोंसे कितने ही मुख्य विरोधोंकी ओर दृष्टि रखनेके कारण वैर-विरोध बढ़ता रहा और लोगोंको एक दूसरेको अच्छी तरहसे देखसकनेका अवसर नहीं मिला। प्राचीन वैदिक सब सह सकते थे परन्तु वेद परित्याग उनकी दृष्टिमें अपराध था।

वैदिकधर्मको इष्ट जन्म-कर्मवाद जैन और बौद्ध दोनों ही धर्मोंका भी मेरुदण्ड है। दोनों ही धर्मोंमें इसका अविकृत रूपसे प्रतिपादन किया गया है। जैनोंने कर्मको एक प्रकारके परमाणुरूप सूक्ष्म पदार्थ (कार्मणवर्गणा) के रूपमें कल्पना करके, उसमें कितनी सयुक्तिक श्रेष्ठ दार्शनिक—विशेषताओंकी सृष्टि ही नहीं की है, किन्तु उसमें कर्म-फलवादकी मूल मन्त्रताको पूर्णरूपसे सुरक्षित रखा है; वैदिक दर्शनका दुःखवाद और जन्म-मरणात्मक दुःखरूप संसार सागरसे पार होनेके लिए निवृत्तिमार्ग अथवा मोक्षान्वेषण—यह वैदिक-जैन और बौद्ध सबका ही प्रधान साध्य है। निवृत्ति एवं तपके द्वारा कर्मबन्धका क्षय होने पर आत्मा कर्मबन्धसे मुक्त होकर स्वभावको प्राप्त करेगा और अपने नित्य-अबद्ध शुद्ध स्वभावके निस्सीम गौरवसे प्रकाशित होगा। उस समय—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

यह स्पष्ट रूपसे जैन और वैदिक शास्त्रोंमें घोषित किया गया है। 'जन्मजन्मांतरोंमें कमाये हुये कर्मोंको; वासनाके विध्वंसक निवृत्तिमार्गके द्वारा क्षय करके परम पद प्राप्तिकी साधना वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों ही धर्मोंमें तर-तमके समान रूपसे उपदेशित की गई है। दार्शनिक मतवादोंके विस्तार और साधनाकी क्रियाओंकी विशिष्टतामें भिन्नता हो सकती है, किन्तु उद्देश्य और गन्तव्य स्थल सबका ही एक है—

रूचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

महिम्नस्तोत्रकी सर्व-धर्मे-समानत्वको करनेमें समर्थ यह उदारता वैदिक शास्त्रोंमें सतत उपदिष्ट होने पर भी संकीर्ण साम्प्रदायिकतासे उत्पन्न विद्वेष बुद्धि प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ-तहाँ प्रकट हुई है; किन्तु आजकल हमने उस संकीर्णताकी क्षुद्रमर्यादाका अतिक्रम करके यह कहना सीखा है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेतिमीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

'ईसाकी आठवीं शतीमें इसी प्रकारके महान उदारभावोंसे अनुप्राणित होकर जैनाचार्य मूर्तिमान स्याद्वाद भट्टाकलङ्कदेव कह गए हैं—

यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा,
पौरापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं,
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा॥

(वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थसे)

उज्जैनके निकट दि० जैन प्राचीन मूर्तियाँ

(बाबू छोटेलाल जैन)

अभी ४ मार्चको पुरातत्त्व विभागके डिप्टी डायरेक्टर जनरल श्री टी० एन रामचन्द्रन् उज्जैनके दौरे पर गए थे। उज्जैनसे ४५ मील दूर 'गन्धबल' नामक स्थानमें अनेक प्राचीन अवशेषोंका निरीक्षण किया, जिनमें अधिकांश दिगम्बर जैन मूर्तियाँ थीं। ये अवशेष परमारयुग-कालीन दशमी शताब्दीके प्रतीत होते हैं।

१. भवानीमन्दिर—यह जैनमन्दिर १० वीं शताब्दीका है। १—यहाँ धरणेन्द्र पद्मावती सहित पार्श्वनाथ धर्मचक्र सहित २—और सिंहलांछन और मातंगयक्ष तथा सिद्धायनी यक्षिणी सहित एक खण्डित महावीर स्वामीका पादपीठ दशमी शताब्दीका है। ३—प्रथम तीर्थंकरकी यक्षिणी चक्रेश्वरी। ४—सिद्धायनी सहित वर्द्धमान, पार्श्वनाथकी मूर्तिके ऊपरी भागमें है। ५—द्वारपाल। ६—द्वारपाल। ७—एक शिलापट्ट तीर्थंकरोंका विद्या देवियों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहित, देवियाँ कुण्डिका सहित प्रदर्शितकी गई हैं। ८—द्वारपाल। ९—छतका शिलाखण्ड जिसकी चौकोर वेदीमें कीर्तिमुख प्रदर्शित किये गए हैं। १०—खड्गासन वर्द्धमान प्रतिमा और उसके ऊपर पार्श्वनाथकी मूर्ति स्तम्भ पर अंकित है। ११—खड्गासन वर्द्धमान, चमरेन्द्र तथा छत्रत्रयादि प्रातिहार्यों सहित। १२—शिलापट्ट चौवीस तीर्थंकरों सहित। १३—शान्तिनाथ, इसके नीचे दानपति और प्रतिष्ठाचार्य भी प्रणाम करते हुए प्रदर्शित किए गए हैं। १४—शांतिनाथ १५—हस्तिपदारूढ़ चतुर्भुज इन्द्र। १६—पद्मप्रभु। १७—सुमतिनाथ। १८—इन्द्र हाथीपर। १९—मातंग और सिद्धायनी सहित वर्द्धमान। २० द्वारपाल वीणा-सहित चारयक्ष, मातंगयक्ष, और शंखनिधिसहित।

२—उक्त भवानीमन्दिरसे ५० फीट दक्षिण पूर्वमें नेमिनाथकी मूर्ति है। तथा आदिनाथका मस्तकभाग, एक यक्षी, और वर्द्धमानकी मूर्ति है।

३. दरगाह—यहाँ वर्द्धमानकी मूर्तिको लपेटे हुए एक बड़का वृक्ष है जहाँ निम्नलिखित मूर्तियाँ हैं। १—सिद्धायनी और मातंग यक्षसहित वर्द्धमान। २—अम्बिका यक्षी और सर्वाण्हयक्ष खड्गासन। ३—चक्रेश्वरी आदिनाथ। ४—द्वारपाल। ५—यक्ष-यक्षी वर्द्धमान। ६ वर्द्धमान। ७—पार्श्वनाथ। ८—नेमिनाथ। ९—ईश्वर (शिव) यक्ष श्रेयांसनाथ। १०—त्रिमुखयक्ष संभवनाथ। ११—त्रिमुख-यक्ष। १२ धर्मचक्र गोमुखयक्ष और चक्रेश्वरी (आदिनाथ)

४. शीतलामाता मन्दिर—यहाँ चक्रेश्वरी, गौरीयक्षी, नेमिनाथकी यक्ष यक्षी (अम्बिका)। आदिनाथ, वर्द्धमानकी खड्गासन मूर्तियाँ, शीतलनाथकी यक्षी माननी, पार्श्वनाथ, किसी तीर्थंकरका पादपीठ, दशवें तीर्थंकरका यक्ष ब्रह्मेश्वर, एक तीर्थंकरका मस्तक, तथा अनेक शिलापट्ट, जो एक चबूतरे में जड़े हुए हैं उन पर तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ अंकित हैं, एक तीर्थंकर मूर्तिका ऊपरका भाग, जिसमें सुर पुष्पवृष्टि प्रदर्शित है, वर्द्धमानकी मूर्ति।

५ हरिजनपुर—यह एक नया मन्दिर है जिसकी दीवालों पर नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, सुमतिनाथ और मातंगयक्ष की मूर्तियाँ अंकित हैं।

६ चमरपुरीकी मात—यह एक प्राचीन टीला है यहाँ इमलीके वृक्षके नीचे जैनमूर्तियाँ दबी हुई हैं। १२ फीट की एक विशाल तीर्थंकर मूर्ति चमरेन्द्रों सहित संभवतः वर्द्धमानकी है। नेमिनाथ और अम्बिकाकी मूर्ति भी है। इस टीलेकी खुदाई होनी चाहिए। यहाँ दशवीं शताब्दीका मंदिर प्राप्त होनेकी सम्भवना है।

७ गंधर्वसेनकामन्दिर—इस मन्दिरमें एक प्रस्तर-खण्ड पर पार्श्वनाथको उपसर्गके बाद केवलज्ञान प्राप्तिका दृश्य अंकित है। यह प्रस्तरखण्ड दशमी शताब्दीसे पूर्व और पर गुप्त कालीन मालूम होता है। इसके अतिरिक्त वर्द्धमान और आदिनाथकी मूर्तियाँ हैं।

८ बालिकाविद्यालय—यहाँ दो तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ हैं। उज्जैनमें सिन्धिया ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट है जहाँ हजारों हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह है जिनमें जैनग्रन्थ भी काफी हैं, जिनकी सूचीके लिये पुस्तकाध्यक्षको लिखा गया है। यहाँ की मूर्तियोंके फोटो आगामी अंकमें प्रकाशित किये जायंगे।

श्रमणका उत्तरलेख न छापना

दो महीनेसे अधिकका समय हो चुका, जब मैंने श्रमण वर्ष ५ के दूसरे अंकमें प्रकाशित जैन साहित्यका विहंगालोकन नामके लेखमें 'जैन साहित्यका दोषपूर्ण विहंगावलोकन' नाम-का एक सयुक्तिक लेख लिखकर और श्रमणके सम्पादक डा० इन्द्रको प्रकाशनार्थ दिया था। परन्तु उन्होंने उसे अपने पत्रमें अभी तक प्रकट नहीं किया, इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने ला० राजकृष्णजी को उसे वापिस लिवानेको भी कहा था, और मुझे भी वापिस लेनेकी प्रेरणाकी थी और कहा था कि आप अपना लेख वापिस नहीं लेंगे तो मुझे अपनी पोज़ीशन क्लीयर (साफ) करनी होगी। मैंने कहा कि आप अपनी पोजीशन क्लीयर (साफ) करें, पर उस लेखको जरूर प्रकाशित करें। परन्तु श्रमणके दो अंक प्रकाशित हो जाने परभी डा० इन्द्रने उसे प्रकाशित नहीं किया। यह मनोवृत्ति बड़ी ही चिन्त्यनीय जान पड़ती हैं और उससे सत्यको बहुत कुछ आघात पहुंच सकता है। हम तो इतना ही चाहते हैं कि जिन पाठकोंके सामने श्रमणका लेख गया उन्हीं पाठकोंके सामने हमारा उत्तरलेख भी जाना चाहिए, जिससे पाठकों-को वस्तु-स्थिति के समझनेमें कोई गल्ती या भ्रम न हो।

—परमानन्द जैन

—x—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेवा-मन्दिर ट्रस्टकी मीटिंग

आज ता० २१-२-५४ रविवारको रात्रिके ७॥ बजेके बाद निम्न महानुभावोंकी उपस्थितिमें वीरसेवामन्दिर ट्रस्टकी मीटिंगका कार्यप्रारम्भ हुआ। १ बाबू छोटेलालजी कलकत्ता (अध्यक्ष) २ पं० जुगलकिशोरजी (अधिष्ठाता) ३ बाबू जयभगवानजी एडवोकेट (मन्त्री) पानीपत, ४ ला० राजकृष्णजी (आ० व्यवस्थापक) देहली, ५ श्रीमती जयवन्तीदेवी, ६ और बाबू पन्नालालजी अग्रवाल, जो हमारे विशेष निमंत्रण पर उपस्थित हुए थे।

१—मंगलाचरणके बाद संस्थाके मंत्री बाबू जयभगवान जी एडवोकेट पानीपतने वीरसेवामन्दिरका विधान उपस्थित किया, और यह निश्चय हुआ कि विधानका अंग्रेजी अनुवाद कराकर बा० जयभगवानजी वकील पानीपतके पास भेजा जाय, तथा उनके देखनेके बाद ला० राजकृष्णजी उसकी रजिष्ट्री करानेका कार्य सम्पन्न करें।

२—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि दरिया गंज नं० २१ देहली में जो प्लाट वीरसेवामन्दिरके लिये खरीदा हुआ है उस पर बिल्डिंग बनानेका कार्य जल्दीसे जल्दी शुरू किया जाय।

३—अनेकांतका एक संपादक मंडल होगा, जिसमें निम्न ५ महानुभाव होंगे। श्री पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, बा० छोटेलालजी, बा० जयभगवानजी वकील, पं० धर्मदेवजी जैतली, और पं० परमानन्द शास्त्री।

४—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि सोसाइटीके रजिष्टर्ड होने पर मुख्तार साहब अपने शयर्स, जो देहली क्लॉथ मिल्स और बिहार सुगर मिल के हैं उन्हें वीरसेवा-मन्दिरके अध्यक्षके नाम ट्रान्सफर कर देवें।

५—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि वीरसेवामन्दिर सरसावाकी बिल्डिंगके दक्षिणकी ओर जो जमीन मकान बनानेके लिये पड़ी हुई है, जिसमें दो दुकानें बनानेके लिये जिसका प्रस्ताव पहलेसे पास हो चुका है उसके लिये दो हजार रुपया लगाकर बना लिया जाय।

६—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि पत्र व्यवहार और हिसाब किताबमें मिति और तारीख अवश्य लिखी जानी चाहिये।

७—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि हिसाब किताबके लिये एक क्लर्ककी नियुक्तिकी जाय।

८—यह मीटिंग प्रस्ताव करती है कि अनेकान्तका नये वर्षका मूल्य ६) रुपया रक्खा जा।

जय भगवान जैन मंत्री, वीरसेवामन्दिर

श्रीजिज्ञासापर मेरा विचार

अनेकान्तकी गत किरण ९ में पंडित श्रीजुगलकिशोरजी मुख्तारने 'श्री जिज्ञासा' नामकी एक शंका प्रकट की थी और उसका समाधान चाहा था, जिस पर मेरा विचार निम्न प्रकार है—

'श्री' शब्द स्वयं लक्ष्मी, शोभा, विभूति, सम्पत्ति, वेष, रचना, विविधउपकरण, त्रिवर्गसम्पत्ति तथा आदर-सत्कार आदि अनेक अर्थोंको लिये हुए है❀। श्री शब्दका प्रयोग प्राचीनकालसे चला आ रहा है। उसका प्रयोग कब, किसने और किसीके प्रति सबसे पहले किया यह अभी अज्ञात है। श्री शब्दका प्रयोग कभी शुरू हुआ हो, पर वह इस बातका द्योतक जरूर है कि वह एक प्रतिष्ठा और आदर सूचक शब्द है। अतः जिस महापुरुषके प्रति 'श्री' या 'श्रियों' का प्रयोग हुआ है वह उनकी प्रतिष्ठा अथवा महानताका द्योतन करता है। लौकिक व्यवहारमें भी एक दूसरेके प्रति पत्रादि लिखनेमें 'श्री' शब्द लिखा जाता है। सम्भव है इसीकारण पूज्य-पुरुषोंके प्रति संख्यावाची श्री शब्द रूढ हुआ हो। क्षुल्लकों और आर्यिकाओंको १०५ श्री और मुनियोंको १०८ श्री क्यों लगाई जाती हैं। इसका कोई पुरातन उल्लेख मेरे देखनेमें नहीं आया और न इसका कोई प्रामाणिक उल्लेख ही दृष्टिगोचर हुआ है।

तीर्थंकर एकहजार आठ लक्षणोंसे युक्त होते हैं। संभव है इसी कारण उन्हें एक हजार आठ श्री लगाई जाती हों×। मुनियोंको १०८, क्षुल्लकों और आर्यिकाओंको १०५ श्री उनके पदानुसार लगानेका रिवाज चला हो। कुछ भी हो पर इतना जरूर कहा जा सकता है कि यह पृथा पुरानी है। हां, एक श्री का प्रयोग तो हम प्राचीन शिलालेखोंमें आचार्यों, भट्टारकों, विद्वानों और राजाओंके प्रति प्रयुक्त हुआ देखते हैं।

नारायना (जयपुर) के १८वीं शताब्दीके एक लेखमें आचार्य पूर्णचन्द्रके साथ १००८ श्री का उल्लेख है। परन्तु इससे पुराना संख्यावाचक 'श्री' का उल्लेख अभी तक नहीं मिला है। —क्षुल्लक सिद्धिसागर

❀ श्रीवेषरचनाशोभा भारतीसरलद्रुमे।
लक्ष्म्यां त्रिवर्गसंपत्तौ वेषोपकरणे मतौ॥ —मेदिनीकोषः।

× कितने ही श्वेताम्बर विद्वान् अपने गुरु आचार्योंको १००८ श्री का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं। —सम्पादक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. D. 211

अनेकान्तके संरक्षक और सहायक

संरक्षक

१५००) बा० नन्दलालजी सरावगी, कलकत्ता
२५१) बा० छोटेलालजी जैन सरावगी ,,
२५१) बा० सोहनलालजी जैन लमेचू ,,
२५१) ला० गुलजारीमल ऋषभदासजी ,,
२५१) बा० ऋषभचन्द (B.R.C. जैन ,,
२५१) बा० दीनानाथजी सरावगी ,,
२५१) बा० रतनलालजी झांझरी ,,
२५१) बा० बल्देवदासजी जैन सरावगी ,,
२५१) सेठ गजराजजी गंगवाल ,,
२५१) सेठ सुआलालजी जैन ,,
२५१) बा० मिश्रीलाल धर्मचन्दजी ,,
२५१) सेठ मांगीलालजी ,,
२५१) सेठ शान्तिप्रसादजी जैन ,,
२५१) बा० त्रिशनदयाल रामजीवनजी, पुरलिया
२५१) ला० कपूरचन्द धूपचन्दजी जैन, कानपुर
२५१) बा० जिनेन्द्रकिशोरजी जैन जौहरी, देहली
२५१) ला० राजकृष्ण प्रेमचन्दजी जैन, देहली
२५१) बा० मनोहरलाल नन्हेंमलजी, देहली
२५१) ला० त्रिलोकचन्दजी, सहारनपुर
२५१) सेठ छदामीलालजी जैन, फीरोजाबाद
२५१) ला० रघुवीरसिंहजी, जैनावाच कम्पनी, देहली
२५१) रायबहादुर सेठ हरखचन्दजी जैन, रांची
२५१) सेठ बधीचन्दजी गंगवाल, जयपुर

सहायक

१०१) बा० राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यू देहली
१०१) ला० परसादीलाल भगवानदासजी पाटनी, देहली
१०१) बा० लालचन्दजी बी० सेठी, उज्जैन
१०१) बा० घनश्यामदास बनारसीदासजी, कलकत्ता
१०१) बा० लालचन्दजी जैन सरावगी ,,
१०१) बा० मोतीलाल मक्खनलालजी, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीप्रसादजी सरावगी, ,,
१०१) बा० काशीनाथजी, ... ,,
१०१) बा० गोपीचन्द रूपचन्दजी ,,
१०१) बा० धनंजयकुमारजी ,,
१०१) बा० जीतमलजी जैन ,,
१०१) बा० चिरंजीलालजी सरावगी ,,
१०१) बा० रतनलाल चांदमलजी जैन, राँची
१०१) ला० महावीरप्रसादजी ठेकेदार, देहली
१०१) ला० रतनलालजी मादीपुरिया, देहली
१०१) श्री फतेहपुर जैन समाज, कलकत्ता
१०१) गुप्तसहायक, सदर बाजार, मेरठ
१०१) श्री शीलमालादेवी धर्मपत्नी डा०श्रीचन्द्रजी, एटा
१०१) ला० मक्खनलाल मोतीलालजी ठेकेदार, देहली
१०१) बा० फूलचन्द रतनलालजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० सुरेन्द्रनाथ नरेन्द्रनाथजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० वंशीधर जुगलकिशोरजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीदास आत्मारामजी सरावगी, पटना
१०१) ला० उदयराम जिनेश्वरदासजी सहारनपुर
१०१) बा० महावीरप्रसादजी एडवोकेट, हिसार
१०१) ला० बलवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) कुँवर यशवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) सेठ जोखीराम बैजनाथ सरावगी, कलकत्ता
१०१) श्रीमती ज्ञानवतीदेवी जैन, धर्मपत्नी 'वैद्यरत्न' आनन्ददास जैन, धर्मपुरा, देहली
१०१) बाबू जिनेन्द्रकुमार जैन, सहारनपुर
१०१) वैद्यराज कन्हैयालालजी चाँद औषधालय, कानपुर
१०१) रतनलालजी जैन कालका वाले देहली

अधिष्ठाता 'वीर-सेवामन्दिर'
सरसावा, जि० सहारनपुर

प्रकाशक—परमानन्दजी जैन शास्त्री १, दरियागंज देहली। मुद्रक—रूप-वाणी प्रिंटिंग हाऊस २३. दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org